है। पुनः, इससे यह जनाया कि जो-जो तप करते थे वह तीनों साथ-ही-साथ करते थे, इससे प्रसन्न होकर तीनों भाइयोंको ब्रह्माने साथ ही वर दिया। तपका वर्णन नहीं हो सकता इससे वर्णन न किया। *'परम उग्र'* का भाव कि अन्य तपस्वियोंका तप उग्र होता था और इनका *'परम उग्र'* है। क्योंकि यह राक्षस-तप है (मनुष्यकी अपेक्षा राक्षस क्लेश सहनेमें, तितिक्षामें, अत्यन्त अधिक दृढ़ एवं कठिन होते हैं, इसीसे भयानक कष्ट उन्होंने उठाये, इतना कि कहा नहीं जाता)।

नोट—१ *'कीन्ह बिबिध तप'* इति। उग्रतप क्यों किया गया? पद्मपुराणमें अगस्त्यजीने श्रीरामजीसे कहा है कि एक बार कुबेरजी विमानपर अपने पिताके पास दर्शन करने गये और चरणोंपर पड़कर उनकी स्तुति करके अपने भवनको लौट गये। रावणने देखकर मातासे पूछा कि ये कौन हैं जो मेरे पिताके चरणोंकी सेवा करके लौट गये हैं। इन्हें किस तपस्यासे ऐसा विमान मिला है? रावणके वचन सुनकर माताको रोष आ गया और वह अनमनी होकर बोली—'अरे! मेरी बात सुन। इसमें शिक्षा-ही-शिक्षा भरी हुई है। जिसके विषयमें तू पूछ रहा है वह मेरी सौतके कोखका रत्न कुबेर है, जिसने अपने जन्मसे अपनी माताके विमल वंशको अधिक उज्ज्वल बना दिया है। परंतु तू तो मेरे गर्भका कीड़ा है, केवल अपना पेट भरनेमें ही लगा हुआ है। कुबेरने तपस्यासे भगवान् शंकरको संतुष्ट करके लङ्काका निवास, मनके समान वेगवाला विमान तथा राज्य और सम्पत्तियाँ प्राप्त की हैं। संसारमें वही माता धन्य, सौभाग्यवती तथा महान् अभ्युदयसे सुशोभित होनेवाली है, जिसके पुत्रने अपने गुणोंसे महापुरुषोंका पद प्राप्त कर लिया हो।' माताके क्रोधपूर्ण वचनोंने रावणको उग्र तपके लिये उत्तेजित किया। वह बोला—'माँ! कीड़ेकी-सी हस्ती रखनेवाला वह कुबेर क्या चीज है? उसकी थोड़ी-सी तपस्या किस गिनतीमें है? बहुत थोड़े सेवकोंवाला उसका राज्य क्या है? यदि मैं अन्न, जल, निद्रा और क्रीड़ाका सर्वथा परित्याग करके ब्रह्माजीको संतुष्ट करनेवाली दुष्कर तपस्याके द्वारा समस्त लोकोंको अपने अधीन न कर लूँ तो मुझे पितृलोकके विनाशका पाप लगे।' रावणका निश्चय जानकर उसके दोनों भाइयोंने भी तपका निश्चय किया।

वाल्मीकीयकी कैकसीने महात्मा कुबेरको पिता विश्रवाके दर्शनोंको जाते हुए देख दशग्रीवकी दृष्टि उनकी ओर आकर्षित करते हुए उससे कहा है—'हे पुत्र! अपने भाई वैश्रवणको देखो, वह कैसा तेजस्वी है। तुम उसके भाई हो; किन्तु देखो तुममें और उसमें कितना अन्तर है। तू भी उन्हींके समान होनेका प्रयत्न कर।' यथा—'**पुत्र वैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसावृतम्। भ्रातृभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम्॥**'(७। ९। ४२)""**त्वमपि मे पुत्र भव वैश्रवणोपमः।**' (४३) रावणने ईर्ष्यायुक्त हो उसी समय उनके समान या उनसे अधिक होनेकी प्रतिज्ञा की। अ० रा० में भी ऐसा ही है।

नोट—२ यह तप गोकर्णक्षेत्रमें किया गया। यथा—'**आगच्छदात्मसिद्ध्यर्थं गोकर्णस्याश्रमं शुभम्।**' (वाल्मी० ७। ९। ४७)

नोट—३ *'बिबिध तप'* इति। महाभारतमें जिन रावणादिकी कथा है उनका तप इस प्रकारका था—रावण एक सहस्र वर्ष वायु भक्षण करके एक पैरपर खड़ा होकर पञ्चाग्निसेवनपूर्वक तप करता रहा। इसके पश्चात् उसने अपना सिर काटकर हवन किया। यथा—'**अतिष्ठदेकपादेन सहस्रं परिवत्सरान्। वायुभक्षो दशग्रीवः पञ्चाग्निः सुसमाहितः॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्छित्त्वा दशाननः। जुहोत्यग्नौ दुराधर्षस्तेनातुष्यज्जगत्प्रभुः॥**'(७। १०। १६, २०) आगे जो ब्रह्माजीने वरदान दिया है उससे अनुमान होता है कि प्रत्येक सहस्र वर्षके अन्तमें वह एक सिर काटकर हवन कर देता था। यथा—'**यद्यदग्नौ हुतं सर्वं शिरस्ते महदीप्सया। तथैव तानि ते देहे भविष्यन्ति यथेप्सया॥**'(३०) अर्थात् जो-जो सिर तुमने अग्निमें हवन किये हैं वे सब तुम्हारे इच्छानुसार फिरसे हो जायँगे। वाल्मीकीय रा० में नौ बार सिरोंका हवन करना स्पष्ट लिखा है। दसवीं बार जब वह दसवाँ सिर काटनेको हुआ तब ब्रह्माजीका आगमन हुआ। यथा—'**दशवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः। पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः॥ एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः। शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम्॥ अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः। छेत्तुकामे दशग्रीवे प्राप्तस्तत्र पितामहः॥**' (वाल्मी० ७। १०। १०—१२)

अध्यात्मरामायण में भी लगभग ये ही श्लोक हैं। पद्मपु० के रावणने सूर्यकी ओर दृष्टि लगाये एक पैरसे खड़े होकर दस हजार वर्षतक तप किया।

वाल्मीकीयमें कुम्भकर्णका तप इस प्रकार है कि धर्म और सन्मार्गमें स्थित होकर ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि-सेवन करता था, वर्षाकालमें वीरासनसे बैठकर वर्षा सहन करता था और जाड़ेमें जलमें बैठता था; इस प्रकार उसने दस हजार वर्ष तप किया। और महाभारतके कुम्भकर्णने उपवासकर पृथ्वीपर '**अधःशायी**' होकर तप किया।

वाल्मीकीयके विभीषणने धर्मपूर्वक पवित्रतासे एक पैरपर खड़े होकर पाँच हजार वर्ष नियम किया। इस नियमको समाप्त करके तब ऊध्र्व्वबाहु होकर सिर ऊपर किये हुए सूर्यपर दृष्टि जमाये हुए पाँच हजार वर्षतक वेदपाठ करते रहे। इस तरह दस हजार वर्षका तप पूरा किया। महाभारतके विभीषणजी प्रथम एक सूखा पत्ता खाकर जप करते रहे। फिर उपवास करते हुए जपपरायण रहे। (वाल्मी० उ० सर्ग १०; महाभारत, वन० अ० २७५)

भिन्न-भिन्न ग्रन्थोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका तप लिखा है। इसीसे कविने ***'बिबिध तप'*** कहकर छोड़ दिया।

टिप्पणी—२ ***'गयउ निकट'''''*** इति। (क) ***'गयउ निकट'*** भाव कि औरोंको प्राय: आकाशवाणीद्वारा वर देते हैं पर यहाँ निकट आये। इसका कारण आगे कहते हैं कि इनका भारी तप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, इसीसे प्रत्यक्ष आकर दर्शन दिये। यथा—***'बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥'*** वैसे ही इनका अपार तप देखा तब आये। (ख) ***'तप देखि'***—अर्थात् जब तीनों भाई अङ्ग काट-काटकर हवन करने लगे तब ब्रह्मा निकट आये। [कुम्भकर्ण और विभीषणका भी अपने-अपने अङ्ग काटकर हवन करनेका प्रमाण हमें नहीं मिला। विभीषणजी तो ऐसा तामसिक तप कभी न करेंगे। ***'माँगहु बर'*** क्योंकि देवताओंकी प्रसन्नता व्यर्थ नहीं जाती।] प्रसन्न हैं, इसीसे वात्सल्यभावसे ***'तात'*** सम्बोधन किया। पुन: रावण ब्रह्माका प्रपौत्र है, इससे ***'तात'*** कहा। क्रमसे वर देते हैं। रावण ज्येष्ठ है; इसीसे प्रथम उसके पास गये।

टिप्पणी—३ ***'करि बिनती पद गहि'''''*** इति। (क) रावण बहुत बड़ा वर माँगना चाहता है, इसीसे उसकी प्राप्तिके लिये उसने पहले विनय की और चरणोंपर गिरा तब वर माँगा। यथा—***'माँगउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥'*** (२। २९) विनती यह की कि आप हमपर प्रसन्न क्यों न हों, आपका प्रसन्न होना यथार्थ ही है। क्योंकि आप हमारे प्रपितामह ही हैं, इत्यादि। यह कहकर चरण पकड़ लिये कि हम आपके चरणोंकी शरण हैं। पुन: (ख) ***'पद गहि दससीसा'*** से जनाया कि बीसों हाथोंसे चरण पकड़े और दसों मस्तक चरणोंपर रख दिये। [तथा दसों मुखोंसे विनती भी की थी। परंतु यदि रावणने नौ सिर काटकर हवन कर दिये हैं तब ब्रह्माजी वर देने आये जैसा वाल्मीकीय, महाभारत आदिका मत है तब तो यह भाव शिथिल हो जाता है।] (ग) ***'सुनहु जगदीसा'*** सम्बोधनका भाव कि आप जगत्‌के स्वामी हैं, आपकी सृष्टिमें हम किसीके मारे न मरें। यथा—***'ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥'*** (१८२। १२) पुन: भाव कि जितने भी जगदीश हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेश और लोकपालादि उनके मारे भी हम न मरें।

टिप्पणी—४ ***'हम काहू के मरहिं न मारे'''''*** इति। (क) हम बहुवचन कहनेका भाव कि हम तीनों भाई किसीके मारे न मरें। किसीके मारे न मरें, इस कथनसे सूचित हुआ कि रावणके हृदयमें तीनों लोकोंके विजयकी इच्छा है। (ख) ***'बानर मनुज जाति दुइ बारे'*** इति। इन दोको छोड़नेका भाव कि ये दोनों राक्षसोंके भक्ष्य हैं। यथा—***'कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥'*** (६। ८) अथवा, ब्रह्मा और शिवजीने रावणकी वाणीके साथ छल किया। यथा—***'रावण कुंभकरन बर माँगत सिव बिरंचि बाचा छले।'*** (गी० ५। ४१) (नहीं तो उसका काम तो ***'हम काहू के मरहिं न मारे'*** से चल जाता। आगे कुछ कहनेकी आवश्यकता न थी।) जब छल हुआ तब रावणने मृत्युका रास्ता माँगा। प्रथम वाक्यमें मृत्युके लिये रास्ता न था।

नोट—४ ***'बानर मनुज जाति दुइ बारे'*** इति। महाभारतके रावणको जब ब्रह्मा वर देने गये तो उन्होंने प्रथम ही यह कहा कि अमरत्वको छोड़कर जो वर चाहो माँग लो। यथा—'**प्रीतोऽस्मि वो निवर्तध्वं वरान्**

वृणुत पुत्रकाः। यद्यदिष्टमृते त्वेकममरत्वं तथास्तु तत्॥'(अ० २७५। २२) तब उसने देव-गन्धर्वादिके नाम गिनाकर उनसे पराजय न होना माँगा। तब ब्रह्माने कहा जिनसे तुमने अभयत्व माँगा उनसे अभय रहोगे। और अपनी तरफसे कहा कि मनुष्यको छोड़कर तुम सबसे अभय रहोगे, ऐसा ही हमने विधान किया है। रावण इस वरसे संतुष्ट हो गया क्योंकि उसने सोचा कि मनुष्य तो मेरे आहार हैं, वे मेरा क्या कर सकते हैं। विष्णु और इन्द्रादि देवता ही जब मुझे नहीं मार सकते तब मनुष्य क्या है?

वाल्मीकीयमें ब्रह्माने वर माँगनेको कहा तब रावणने अमरत्व माँगा। इसपर ब्रह्माने कहा कि सबसे अमरत्व नहीं मिल सकता। तुम अन्य वर माँगो। यथा—'**नास्ति सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे।**' (७। १०। १७) तब उन्होंने सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओंसे अमरत्व माँगा और कहा कि मनुष्यादि अन्य प्राणियोंसे हमें चिन्ता नहीं है। वे तो तृणके समान हैं (यथा—'**सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम्। अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत॥ नहि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित। तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादय:॥**'(७। १०। १९-२०)

अध्यात्मरा० में ब्रह्माने वर माँगनेको कहा जैसा मानसमें है। रावणने '**सुपर्णनाग**·····' से अमरत्व माँगा और मनुष्यको तृणवत् मानकर स्वयं छोड़ दिया। वाल्मीकीयमें '**मानुषादय:**' है और अ० रा० में '**तृणभूताय मानुषा:**' है। '**मानुषादय:**' में वानर और मनुष्य दोनों आ जाते हैं जिन्हें मानसकल्पके रावणने तृणवत् जानकर छोड़ दिया। ☞श्रीमद्गोस्वामीजीके अक्षरोंकी स्थिति बड़ी विलक्षण है। उनके रावणने भी प्रथम यही कहा कि ***'हम काहू के मरहिं न मारें।'*** इतना एक चरणमें लिखकर तब दूसरे चरणमें ***'बानर मनुज जाति दुइ बारें'*** कहा। इस तरह वाल्मीकीयका भाव भी इसमें आ जाता है। अर्थात् प्रथम उसने अमरत्व माँगा। यह वर मिलता न देख उसने दोको बरा दिया।

नोट ५—यहाँ लोग यह शंका करते हैं कि वानरसे तो वह मरा नहीं इनको क्यों छोड़ा? समाधान—(क) तुच्छ जान दोको छोड़ दिया, यह आवश्यक नहीं था कि जिसके हाथ मृत्यु हो उसीको छोड़ता। पुन:, संग्राममें मनुष्य और वानर दोनों रहे। उसका तात्पर्य यही था कि इनको छोड़ किसीके हाथ न मरूँ, इनमेंसे कोई मार सके तो मार सके। रावण तो जानता था कि ब्रह्माने मेरी मृत्यु मनुष्यसे लिखी है, यथा—***'नरके कर आपन बध बाँची। हँसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥'*** (६। २९) पर इन्हें तुच्छ समझ विश्वास न करता था कि इनमेंसे किसीसे भी मेरी मृत्यु होगी। इससे दोनोंको बरा दिया। पुन:, (ख) इसी ग्रन्थमें यह भी प्रमाण है कि उसने अपनी मृत्यु 'मनुज' से माँगी, यथा—*'रावन मरन मनुज कर जाँचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साँचा॥'* (४९। १) इससे यह भाव लोग कहते हैं कि अपने लिये मनुज और निशाचरोंके लिये वानर कहा। अतएव *'हम'* बहुवचन कहा जिससे वर सार्थक हो जाता है। (यहाँ 'मनुज' शब्द श्लिष्ट है। 'मनुष्य' अर्थके अतिरिक्त दूसरा अर्थ 'मनु-प्रार्थित तथा उन्हींके द्वारा जायमान होनेवाले' यह भी देता है। अर्थात् तेरी मृत्यु उनके द्वारा हो जिन्होंने मनुको बर दिया था कि हम तुम्हारे पुत्र होंगे, मनुष्यरूप धारण करेंगे।)

एवमस्तु तुम बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा॥५॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गएऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भएऊ॥६॥
जौं एहिं खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥७॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेसि नींद मास षट केरी॥८॥

दो०—गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर माँगु।
तेहि माँगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु*॥१७७॥

अर्थ—(शिवजी कहते हैं—) मैंने और ब्रह्माने मिलकर उसको वर दिया—'ऐसा ही हो। तुमने बड़ा

* अनुराग—१६६१।

तप किया है'॥ ५॥ फिर प्रभु (ब्रह्माजी) कुम्भकर्णके पास गये। उसको देखकर (उनके) मनमें बड़ा विस्मय हुआ। जो यह खल नित्य आहार करेगा तो सारा संसार ही उजड़ जायगा॥ ६-७॥ (ब्रह्माने यह सोचकर) सरस्वतीको प्रेरित कर उसकी बुद्धि फेर दी (जिससे उसने) छः महीनेकी नींद माँगी॥ ८॥ तत्पश्चात् वे विभीषणजीके पास गये और कहा—'पुत्र वर माँगो।' उसने भगवान्‌के चरणकमलोंमें विशुद्ध अनुराग माँगा॥ १७७॥

टिप्पणी—१ *'एवमस्तु तुम'''''* इति। (क) *'तुम बड़ तप कीन्हा'* कहकर *'एवमस्तु'* कहनेका भाव कि यह वरदान बहुत कठिन है, देने योग्य नहीं है, हम न देते परंतु तुमने बड़ा तप किया है इससे तुमको देते हैं। (ख) *'मैं ब्रह्मा मिलि'''''* इति। मिलकर वर देनेका भाव कि उसने तप करके दोनों देवताओंको संतुष्ट किया, इसीसे दोनोंने वर दिया। इसने अपने मस्तक काट-काटकर शिवजीको अर्पण किये थे। यथा—*'सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एकके कोटिन्ह पाए॥'* (६। ९३) *'जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिए दस माथ।'* (५। ४९) इसीसे ब्रह्माके साथ शिवजीने भी वर दिया। कुम्भकर्ण और विभीषणको केवल ब्रह्माने वर दिये। यदि तीनोंको दोनोंने वर दिया होता तो *'मैं ब्रह्मा मिलि'* यह वाक्य बीचमें न कहते। तीनों भाइयोंको वर देकर तब यह वाक्य लिखते। पुनः *'तेहि'* एकवचन है इससे भी केवल रावणको दोनोंका वर देना सिद्ध होता है। अन्यथा *'तिन्हहिं'* शब्द देते। पुनः, मिलकर वर देनेका भाव कि यदि दोनों साथ-साथ वर न देते तो वह तपसे निवृत्त न होता। एकसे वर पाकर फिर दूसरेसे वर प्राप्त करनेके लिये तप करता रहता। अनर्थके दो वरदान देने पड़ते। इसीसे एक ही वरदानमें दोनों शामिल हो गये। यह चतुरता है। (ग) ब्रह्माजी वर देने आये थे, यथा—*'गयउ निकट तप देखि बिधाता।'* और वरदान देकर उनका जाना भी कहा है, यथा—*'तिन्हहिं देइ बर ब्रह्म सिधाए।'* (१७८। १) शिवजी कहाँसे आ गये। वे अपना होना स्वयं कह रहे हैं। उनका न तो कहीं आना लिखा गया न जाना? वे कहीं आये-गये नहीं (रावण आदि शिवजीके स्थानमें ही तप कर रहे थे। उसने उनको ही तो सिर काट-काटकर चढ़ाये थे। यथा—*'सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी॥'* (६। २५) *'हुने अनल महँ बार बहु हरषि साखि गौरीस॥'* (६। २८) वहाँ शिवजीकी मूर्ति होगी। ब्रह्माजी वर देने लगे तब वे भी प्रकट हो गये)। इसीसे उनका आना न लिखा केवल वर देना लिखा। [अथवा, *'बिधाता'* शब्दसे दोनोंका बोध होता है। क्योंकि पुराणोंमें शिवजीको भी धारण-पोषण करनेवाला कहा है। (रा० प्र०) इस तरह *'गएउ निकट तप देखि बिधाता'* में दोनोंका आगमन जना दिया। *'बिधाता'* शब्द एकवचन है उसीके अनुसार *'गएउ'* क्रिया दी गयी। वाल्मीकीय, महाभारत, पद्मपुराण और अध्यात्ममें केवल ब्रह्माका वर देना कहा गया है। वि० त्रि० कहते हैं कि *'मैं'* प्रथम कहनेसे *'एवमस्तु'* कहनेमें शिवजी आगे दिखायी पड़े।

टिप्पणी २— *'पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गएऊ।'''''* इति। (क) *'पुनि'* का भाव कि क्रमसे वरदान दिये। प्रथम रावणको तब उससे छोटे कुम्भकर्णको तब उससे छोटे विभीषणको। *'प्रभु'* कुम्भकर्णकी मति फेर देंगे, कुछ-का-कुछ कहला दिया ऐसे समर्थ हैं। इसीसे *'प्रभु'* कहा—'**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः प्रभुः।**' *'कुंभकरन पहिं गएऊ'*—(*'प्रभु'*, *'गएऊ'* एकवचन शब्दोंसे जनाया कि इसे केवल ब्रह्माजीने वर दिया। शिवजी रावणको वर देकर वहीं अन्तर्धान हो गये) पुनः, *'गएऊ'* से सूचित किया कि तीनों भाई कुछ-कुछ दूरीपर अलग-अलग बैठकर तप कर रहे थे, एक जगह न थे। (ख) *'तेहि बिलोकि'''''* से सूचित हुआ कि इतना भारी स्वरूप है कि चाहे तो समस्त सृष्टिको खा डाले। पुनः, कुम्भकर्ण जन्म होते ही कुछ दिन बाद तप करने लगा। हजारों वर्ष बीत गये इसने कुछ भी भोजन नहीं किया, अब भोजन करेगा। इसीसे ब्रह्माजीको संदेह हुआ जैसा आगे लिखते हैं—*जौं एहि खल''''' ।'*

नोट—१ *'तेहि बिलोकि मन बिसमय भएऊ'* इति। वाल्मीकिजी लिखते हैं कि जब ब्रह्माजी कुम्भकर्णको वर देनेको उद्यत हुए तब उनके साथके देवताओंने उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि आप इसे वर न दें क्योंकि बिना वर पाये ही यह तीनों लोकोंको सताता रहा है। देखिये, इसने नन्दनवनमें सात अप्सराओं और इन्द्रके दस सेवकोंको खा डाला। ऋषियों और मनुष्योंको तो गिनती ही नहीं कि कितने खा डाले। वर

पानेपर तो यह तीनों लोकोंको खा डालेगा। यथा—'**नन्दनेऽप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश॥ अनेन भक्षिता ब्रह्मन्नृषयो मानुषास्तथा। अलब्धवरपूर्वेण यत्कृतं राक्षसेन तु॥**'(३७-३८), '**यद्येष वरलब्धः स्याद्भक्षयेद्भुवनत्रयम्।**' आप इसे वरके बहाने अज्ञान दीजिये। देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माने सरस्वतीका स्मरण किया और उनको आज्ञा दी कि कुम्भकर्णकी जिह्वापर बैठकर इससे कहलाओ। यथा—'**वाणि त्वं राक्षसेन्द्रस्य भव वाग्देवतेप्सिता।**'(७। १०। ४३) सरस्वती मुखमें बैठ गयीं।

अध्यात्मरा० में सरस्वतीद्वारा मोहित कुम्भकर्णने वर माँगा कि मैं छः मास सोऊँ और एक दिन भोजन करूँ।—'**स्वप्स्यामि देव षण्मासान्दिनमेकं तु भोजनम्।**'(७। २। २१)

मानसकल्पके कुम्भकर्णको तो देखकर स्वयं ब्रह्माजी विस्मित हो गये, इसीसे उन्होंने स्वयं सरस्वतीको प्रेरित किया।

नोट—२ प्र० सं० में हमने लिखा था कि 'कुम्भकर्ण पर्वताकार विशाल था। पैदा होते ही इसने एक हजार प्राणियोंको खा डाला। इन्द्रने वज्र चलाया वह भी सह लिया और उलटे ऐरावतका दाँत उखाड़कर ऐसा मारा कि वे भगे। इसने सात अप्सराओं, दस देवदूतों और अगणित ऋषियोंको खा डाला। जब ब्रह्माजी वर देनेको हुए तब देवताओंने सब वृत्तान्त स्मरण कराया। इससे सरस्वतीद्वारा उन्होंने वाणी फेर दी, मति फेर दी। 'इन्द्र' पद माँगता सो उसके बदले 'निद्र' माँगा। वा, 'छः मास जागरण और एक दिन नींद' माँगता सो उसका उलटा माँगा।'

नोट—३ वाल्मीकीय और अध्यात्मरा० में रावणके पश्चात् विभीषणको वर दिया गया तब कुम्भकर्णको। महाभारतमें वही क्रम है जो मानसमें है।

टिप्पणी—३ '*जौं एहि खल*…' इति। '*खल*' कहा, क्योंकि यह अन्नादिसे पेट न भरेगा, किंतु सब जीवोंको खायेगा। खल जीवोंका भक्षण करते हैं; यथा—'***कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं।***' (५। ३), '***खल मनुजाद द्विजामिष भोगी।***' (६। ४४) इत्यादि। यह किसी जीवको न छोड़ेगा। '***नित करब अहारू***' कहा क्योंकि बिना आहारके कोई रह नहीं सकता। भोजन नित्यप्रति किया जाता है, यह नित्यका काम है। अतः यह भी नित्यप्रति आहार करेगा ही। '***होइहि सब उजारि संसारू***'—भाव कि जीव तो वर्षोंमें जाकर आहारके योग्य होते हैं, और नित्य ही इसे बहुत-सा भोजन चाहिये, इतने जीव कहाँसे आयेंगे। इसके भोजनके लिये सारी सृष्टि भी न अँटेगी (पर्याप्त होगी)। सारा संसार ही नष्ट हो जायगा। यथा—'***जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥***' (१८०। ५) ब्रह्माजी सृष्टि रचते हैं इसीसे संसारके उजड़नेकी चिन्ता हुई।

टिप्पणी—४ '***सारद प्रेरि तासु मति फेरी***…' इति। (क) शारदा बुद्धि फेरनेमें प्रधान हैं। बुद्धिका फेरना इनके अधिकारमें है। इसीसे जहाँ ऐसा काम होता है वहाँ ये ही बुलायी जाती हैं। यथा—'***अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।***'(२। १२),'***फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥***' (२। २९५) इत्यादि। अतः उसके द्वारा बुद्धि फेर दी। '***मति फेरी***' से जनाया कि अन्य वर माँगनेका निश्चय उसने बुद्धिसे किया था। वह बुद्धि उसकी पलट दी। (ख) ब्रह्माने रावणसे वर माँगनेको कहा और विभीषणजीसे भी, यथा—'***मागहु बर प्रसन्न मैं ताता।***', '***गएउ बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर माँगु।***' किंतु कुम्भकर्णको वर माँगनेको न कहा। कारण कि कुम्भकर्णको देखते ही ब्रह्माजी विस्मयको प्राप्त हो गये, अपनी सृष्टिकी रक्षाकी चिन्तामें पड़ गये—'***तेहि बिलोकि मन बिसमय भएऊ।***', और उन्होंने सरस्वतीको बुद्धि फेरनेको प्रेरित किया। जब सरस्वतीने मति फेर दी, तब ब्रह्माजीको सामने देखकर कुम्भकर्णने स्वयं ही वर माँगा। (जब वर माँगनेको ही नहीं कहा तब '*तात*', '*पुत्र*' या और कोई सम्बोधनका प्रश्न ही नहीं रह जाता। जब माँगनेको कहते तब सम्बोधनके सम्बन्धमें शंका हो सकती थी) (ग) अन्य कल्पोंमें ब्रह्माने रावण और कुम्भकर्ण दोनोंको छला। जैसा गीतावलीमें कहा गया है। इस कल्पमें केवल कुम्भकर्णके साथ छल किया गया। यदि ऐसा न होता तो गोस्वामीजी रावणका भी छला जाना लिखते, केवल इसकी बुद्धिका फेरना न लिखते।

टिप्पणी—५ '***गए बिभीषण पास पुनि***…' इति। (क) यहाँके लिये बहुवचन क्रियाका प्रयोग हुआ।

यह आदरसम्मानका सूचक है। पूर्व जो वर दिये थे वे अनर्थके थे तथा उनमें छल किया गया था। कुछ बचाकर दिया गया था। अतः वहाँ *'गएऊ'* एकवचनका प्रयोग हुआ है। यथा—*'गयउ निकट तप देखि बिधाता', कुंभकरन पहिं गएऊ।'* (ख) विभीषण सबसे छोटे हैं इसीसे उनके पास सबसे पीछे गये। (सम्भवतः इसी क्रमसे तीनों बैठे भी होंगे) (ग) ***'पुत्र बर माँगु'***—विभीषणजी भक्त हैं। भक्त भगवान्‌की भक्ति करके सब पितरोंका उद्धार करते हैं। इसीसे *'पुत्र'* कहा। यथा—**'पुन्नरकात् त्रायते इति पुत्रः, पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवः॥'**(वायुपुराणे) अर्थात् जो *'पुं'* नामक नरकसे अपने पितरोंकी रक्षा करे वह 'पुत्र' कहलाता है। ये भक्ति करके अपने पितरोंको कृतार्थ करनेवाले होंगे। [ब्रह्माजी जानते हैं कि रावण अहंकारी है, मान-बड़ाई चाहता है। अतः *'गएउ'* एकवचनसे सूचित किया कि रावण ब्रह्माजीका भी अपमान करेगा, वैसी ही व्यवस्था कुम्भकर्णकी भी है। विभीषणको अभिमान नहीं था, वह सबका आदर-सम्मान करेगा, यह भेद सूचित करनेके लिये विभीषणके पास जानेपर *'गए'* और *'पुत्र बर माँगु'* शब्दोंका प्रयोग किया गया। रावण और कुम्भकर्णको पुत्र न कहा, क्योंकि वे तो वंशके पितरोंको कलंकित करनेवाले हैं। विभीषण कुलकीर्तिको बढ़ाकर पुत्र नामको सार्थक करेंगे (प० प० प्र०)] (घ) *'माँगेउ भगवंत पद''''* इति। भगवन्तपदमें अनुराग माँगनेका भाव कि इससे छः ऐश्वर्य वशमें कर लिये। भक्तिसे ऐश्वर्य स्वयं प्राप्त होते हैं। छः ऐश्वर्य यथा—**'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥'** अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। (विशेष 'भगवान्' शब्दपर दोहा (१३। ४) मा० पी० भाग १ में देखिये) (ङ) *'अमल अनुराग'* भाव कि रावण और कुम्भकर्णने स्वार्थ माँगा और स्वार्थ छल है। यथा—*'स्वारथ छल फल चारि बिहाई।'* छल अनुरागका मल है। विभीषणने स्वार्थरहित भगवान्‌की भक्ति माँगी। स्वार्थरहित ही अमल है। भानुप्रतापका यह मन्त्री था। उस समय भी यह हरिभक्त था, यथा—*'सचिव धरमरुचि हरिपद प्रीती।'* अतः राक्षस-तनमें भी वह हरिभक्त हुआ। यहाँ **'न मे भक्तः प्रणश्यति।'**(गीता ९। ३१) *'ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥'* (७। ७९। ३) ये वाक्य चरितार्थ हुए।

तिन्हहिं देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥ १॥
मय तनया मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥ २॥
सोइ मय दीन्हि रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति जानी*॥ ३॥
हरषित भएउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहसि जाई॥ ४॥

शब्दार्थ—*'मय'*—यह दैत्य कश्यपका पुत्र था। दिति इसकी माताका नाम है। यह बड़ा शिल्पी और मायावी था। हेमा अप्सरासे इसके दो पुत्र मायावी और दुन्दुभी और एक कन्या मन्दोदरी हुई। त्रिपुरासुरने इसी दैत्यसे अपने तीनों विमानरूपी पुर बनवाये थे जो तीनों लोकोंमें बिना रोक-टोकके जाते थे। यह दानवोंका विश्वकर्मा था। श्रीकृष्णजी इसे चक्र चलाकर मारना और अग्निदेव जला डालना चाहते थे। अर्जुनने इसकी रक्षा की थी। श्रीकृष्णजीके कहनेसे इसीने श्रीयुधिष्ठिर महाराजके लिये मणिमय सर्वगुणसम्पन्न दिव्यसभाका निर्माण किया था, जो देवता, मनुष्य एवं असुरोंके सम्पूर्ण कला-कौशलका नमूना था। इसीने देवदत्त नामक शङ्ख अर्जुनको और दैत्यराज वृषपर्वाकी गदा भीमसेनको दी थी। **तनुजा**=तनसे जायमान=लड़की; कन्या। मन्दोदरी—यह भी उस पञ्चकमेंसे एक है जिनका नित्य स्मरण महापातकका नाशक है। यथा—**'अहल्या द्रौपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा। पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥'** (आचारमयूख) **'पञ्चकं ना'** का 'पञ्चकन्या' अशुद्ध पाठ करके लोगोंने इनको पञ्च कन्या कहा है। विशेष मा० पी० भाग १ दोहा २४ (४-५) में देखिये। **ललामा**=रत्न; सुन्दर। यथा—**'ललामा सुन्दरो ज्ञेयः ललामो रत्नमुच्यते इत्यनेकार्थः।'** **नारि ललामा**=स्त्री-रत्न, स्त्रियोंमें शिरोमणि। जातुधान (यातुधान)=राक्षस।

* रानी—वै०।

अर्थ—ब्रह्माजी उन्हें वर देकर चले। वे प्रसन्न होकर अपने घर आये॥ १॥ मय (दानव) की मन्दोदरी नामकी कन्या जो परम सुन्दरी और स्त्रियोंमें शिरोमणि थी उसको मयने ले आकर रावणको यह जानकर दी कि वह निशाचरोंका राजा होगा॥ २-३॥ अच्छी स्त्री पाकर वह प्रसन्न हुआ। फिर उसने जाकर दोनों भाइयोंका विवाह किया॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'तिन्हहिं देइ बर'''' '* इति। ब्रह्माने रावणको वर दिया यह लिखा गया—*'एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा',* पर कुम्भकर्ण और विभीषणको *'एवमस्तु'* कहना नहीं लिखा गया। इसीसे यहाँ *'तिन्हहि'* शब्द देकर सबको *'एवमस्तु'* कहना और वर देना सूचित कर दिया। *'तिन्हहिं''''सिधाए। हरषित''''आए'* का भाव कि उधर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले, इतनेहीमें ये सब मारे हर्षके अपने घर श्लेष्मातक वनमें आ गये। (ख) *'हरषित'* का भाव कि रावण और कुम्भकर्णके साथ छल हुआ जिससे रावणने नर-वानरके हाथ मृत्यु और कुम्भकर्णने छ: मासकी नींद माँगी। दोनों भाइयोंको मालूम नहीं हुआ कि उनके साथ छल हुआ है, इसीसे हर्षित आये। (रावणने स्वयं नर-वानरको छोड़ दिया, उनसे अभयत्व नहीं माँगा। केवल उनको तुच्छ समझकर।) यदि छल मालूम होता तो पछताते। [यही मत अध्यात्मका जान पड़ता है; जैसा **'सरस्वती च तद्वक्त्रान्निर्गता प्रययौ दिवम्। कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दु:खित:। अनभिप्रेतमेवास्यात्किं निर्गतमहो विधि:।'**(७। २। २२-२३)अर्थात् सरस्वतीके निकल जानेपर वह दु:खित हो सोच करने लगा कि 'अहो भाग्यका चक्र तो देखो। जिसकी मुझे इच्छा नहीं वह बात मेरे मुँहसे कैसे निकल गयी?' इन शब्दोंसे प्रकट होता है महाभारतके कुम्भकर्णको नहीं मालूम हुआ। पर वाल्मीकीयके कुम्भकर्णने अनुमानसे जान लिया कि देवताओंने उसे मोहित कर दिया था। यथा—**'अहं व्यामोहितो देवैरिति मन्ये तदागतै:।'**(वाल्मी० ७। १०। ४८) (ग) *'गृह आये'*—भाव कि ब्रह्माके वरसे तीनों लोकोंको जीतनेका सामर्थ्य प्राप्त हो गया तो भी लोकपालोंको जीतनेके लिये तुरत न गया, क्योंकि ऐसा साहस करना नीतिके विरुद्ध है। अभी चढ़ाईका समय नहीं है, समय पाकर धावा करेंगे। इसीसे अभी (सबको समाचार देने आदिके लिये) घर आये। [विश्रवा मुनि जिस वनमें तप करते थे उसी वनमें अभीतक ये मातासहित रहते थे, वहीं गये। यथा—**'एवं लब्धवरा: सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजस:। श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन् सुखम्॥'**(वाल्मी० ७। १०। ४९)।]

टिप्पणी २ (क) *'मय तनुजा'* से कुलकी सुन्दर (उत्तम कश्यपकुलकी), *'मंदोदरि नामा'* से नाम भी सुन्दर (पतली कमरवाली। पतली कमर सौन्दर्यमें गिनी गयी है। शास्त्रमें जिन और जिस प्रकारके नामोंका निषेध है वैसा यह नाम नहीं है), *'परम सुंदरी'* से स्वरूपकी सुन्दरता और *'नारि ललामा'* से सुन्दर गुणोंवाली जनाया। पुन:, (ख) *'परम सुंदरी'* है अर्थात् रावणकी अन्य सब रानियाँ भी सुन्दर हैं, यथा *'देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नागकुमारि। जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदरि बर नारि॥'* (१८२) देव-यक्षादिकी कन्याएँ जो इसकी रानियाँ हुईं वे भी बहुत सुन्दर हैं पर यह *'परम सुन्दर'* है। *'ललामा'* का भाव कि सब रानियाँ श्रेष्ठ हैं—*'सुंदरि बर नारि';* वैसी ही यह भी श्रेष्ठ है, (सबमें रत्नरूप है, शिरोमणि है)। [अध्यात्मरा० में जो **'सुतां मन्दोदरीं नाम्ना ददौ लोकैकसुन्दरीम्।'**(७। २। ४०) है, वही यहाँ *'तनुजा मंदोदरि नामा', दीन्हि', 'परम सुंदरी नारि ललामा'* है। *'परम सुंदरी नारि ललामा'*=लोकोंमें एक ही सुन्दरी। वाल्मीकरा० में लिखा है कि यह इतनी सुन्दर थी कि इसे देखकर हनुमान्‌जीको भ्रम हुआ कि यही सीता तो नहीं हैं। यथा—**'गौरीं कनकवर्णाङ्गीमिष्टामन्त:पुरेश्वरीम्। कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्॥ स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मज:। तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा॥'**(५। १०। ५२-५३)

टिप्पणी ३—*'दीन्हि रावनहि आनी'* इति। भाव कि विवाहका लग्न आदि न था फिर भी उसने शीघ्र ही अपनी कन्या लाकर उसको अर्पण कर दिया। इसका कारण अगले चरणमें कहते हैं कि *'होइहि जातुधानपति'* अर्थात् यह राक्षसोंका राजा होगा। *'जानी'*—क्योंकि ब्रह्माके वरसे रावण समस्त देवतादिसे अवध्य है, (सब भाइयोंमें बड़ा है और यह वर इसीको मिला है दूसरोंको नहीं), अत: यह सबको जीतेगा, सबपर इसका

अधिकार हो जायगा। यह जानकर अपनी कन्या प्रथम ही दी जिसमें यातुधानपति होनेपर मेरी कन्या ज्येष्ठ पटरानी हो, कोई दूसरा अपनी कन्या न लाकर पहले ब्याह दे। *'दीन्हि''''''आनी'* से जनाया कि डोला विवाह हुआ। [वाल्मीकिजी लिखते हैं कि रावण शिकार खेल रहा था। उसी समय मय मन्दोदरीसहित उसी वनमें पहुँचा। रावणने उसे देखकर उसका तथा कन्याका परिचय चाहा। मयने अपने वंश तथा कन्याका परिचय देकर कहा कि इसके लिये वर खोजने आया हूँ। आप अपना परिचय दें। रावणने अपने वंशका परिचय तथा पिताका नाम बताया। महर्षिका पुत्र जानकर मयने उसके हाथमें मन्दोदरीका हाथ पकड़ाकर कहा कि आप इसे पत्नीरूपसे ग्रहण करें। दशग्रीवने बात स्वीकार कर ली। वहीं अग्नि जलाकर उसने मन्दोदरीका पाणिग्रहण किया। (७। १२। ४—२०) मानसके *'दीन्हि''''''आनी'* में ये सब भाव आ जाते हैं। केवल भेद इतना है कि मानसकल्पमें मयने यह जानकर उसको दिया कि यह पटरानी होगी और वहाँ ब्रह्माके कुल तथा महर्षिका पुत्र जानकर कन्या दी गयी।]

टिप्पणी—४ *'हरषित भएउ....'* इति। (क) हर्षित होनेका भाव कि अन्य स्त्रियोंको पाकर इतना प्रसन्न नहीं हुआ। यह *'परम सुंदरी'* है इससे प्रसन्न हुआ। [यह भारी रत्न घर बैठे ही मिल गया, अतः हर्षित हुआ। औरोंको तो बलात् लाया, उनके सम्बन्धियोंको जीता, दुःख दिया या मार डाला था, वह भी पहले उदास ही रही होगी। और मन्दोदरीको तो उसका पिता स्वयं आकर अर्पण कर गया, कन्या और पिता दोनों ही प्रसन्न थे। इसीसे रावण भी प्रसन्न हुआ। प्रथम ही यह रत्न मिला अतः हर्ष है।] (ख) *'पुनि दोउ बंधु.....'* अर्थात् अपना विवाह हो जानेपर *'जाइ'* का भाव कि अपना ब्याह तो घर बैठे हो गया, पर भाइयोंके विवाहके लिये उसे चढ़ाई करनी पड़ी। [वैरोचनकी पौत्री अर्थात् बलिकी बेटीकी बेटी जिसका नाम वज्रज्वाला था कुम्भकर्णको ब्याही गयी। गन्धर्वराज शैलूषकी लड़की सरमा, जो बड़ी धर्मज्ञा थी, विभीषणजीको ब्याही गयी। यथा—'**वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः। तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः समकल्पयत्॥ गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः। सरमां नाम धर्मज्ञां लेभे भार्यां विभीषणः॥**' (वाल्मी० ७। १२। २३-२४)।] (ग) *'बिआहेसि जाई'* रावणने जाकर इनका ब्याह किया। इससे सूचित हआ कि ब्रह्माजी, पुलस्त्यजी, विश्रवा मुनि और कुबेर ये कोई रावणके काममें सम्मिलित न हुए और न हैं।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मँझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥५॥
सोइ मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥६॥
भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥७॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥८॥

शब्दार्थ—*त्रिकूट*—तीन शिखरवाला पर्वत। कहते हैं कि सुन्दर, कुम्भिला और सुवेला इन तीन शिखरोंके होनेसे इसका त्रिकूटाचल नाम पड़ा। इसीपर लङ्का बसी है। देवीभागवतके अनुसार यह एक पीठस्थान है। वामनपुराणके अनुसार इस नामका एक पर्वत क्षीरोदसमुद्रमें है जहाँ नारदजी रहते हैं। कोई ऐसा भी कहते हैं कि एक बार गरुड़ और पवनदेवमें विवाद हुआ कि किसका बल बड़ा है। पवनदेवने प्रचण्ड वेगसे सुमेरुका त्रिकूट नामक शिखर उखाड़कर समुद्रमें फेंक दिया। यह वही त्रिकूटाचल है। लङ्का कौन और कहाँ थी इसमें मतभेद है। पर यह निश्चय है कि आजकी लङ्का वह लङ्का नहीं है। **मँझारी**=मध्यमें। बीचमें। *निर्मित*=निर्माण किया, रचा वा बनाया हुआ। *दुर्गम*=जिसमें किसीकी पहुँच बहुत कठिन हो। **सँवारा**=सजाया। **बंका**=बाका, टेढ़ा, दुर्धर्ष। *भोगावति* (भोगवती)—नागदेवताओंकी रमणीय पुरीका नाम है जो पातालमें है। यह भोगप्रधान पुरियोंमेंसे एक है।

अर्थ—समुद्रके बीचमें ब्रह्माका निर्माण किया हुआ एक बहुत ही विशाल और दुर्गम त्रिकूटाचल पर्वत था॥ ५॥ उसीको मयदानवने फिरसे सँवारा-सजाया। उसमें मणिजटित सुवर्णके अगणित महल थे॥ ६॥ जैसे नागकुलके निवासवाली भोगवती और जैसी इन्द्रके निवासकी अमरावती पुरी है॥ ७॥ उन (दोनों पुरियों) से भी बढ़कर रमणीय और अत्यन्त दुर्धर्ष तथा जगत्में प्रसिद्ध उसका नाम लङ्का था॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'गिरि त्रिकूट......'* इति। *'गिरि त्रिकूट', 'सिंधु मँझारी', 'बिधि निर्मित'* ये सब 'दुर्गमता' के हेतु प्रथम कहकर तब *'दुर्गम'* कहते हैं। अर्थात् पहाड़के ऊपर है; इससे *'दुर्गम'* है। फिर चारों ओर समुद्र है। ब्रह्माका बनाया हुआ है अर्थात् ब्रह्माजीने ही इसके चारों ओर पहाड़ बना दिये हैं जिससे चढ़नेका गम्य नहीं। इसीसे *'अति'* दुर्गम है। कोई जल्दी इसपर चढ़ नहीं सकता। [वाल्मीकीयमें श्रीहनुमान्‌जीने लङ्कासे लौटनेपर उसकी दुर्गमताका विस्तारसे वर्णन किया है कि देवदानवादिका तो कहना ही क्या पक्षीकी भी वहाँ पहुँच नहीं। यथा—**'देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। अप्रधृष्यां पुरीं लंकां रावणेन सुरक्षिताम्॥'** (६। १। ४) 'ये वचन स्वयं श्रीरामजीके हैं कि रावणद्वारा सुरक्षित लङ्कापुरीमें देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस भी नहीं जा सकते। सुन्दरकाण्डमें विशेष लिखा गया है।] *'अति भारी'* कहा क्योंकि इसके एक ही शिखरपर अस्सी कोसका लम्बा और चालीस कोस चौड़ा लङ्का नगर बसा हुआ है। ☞ यहाँ गिरिदुर्ग वर्णन किया। गिरिदुर्ग समस्त दुर्गोंमें प्रशस्त माना गया है। यथा—**'सर्वेषां चैव दुर्गाणां गिरिदुर्गः प्रशस्यते।'** लङ्का गिरिके ऊपर है, यथा—*'गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥'* (४। २८)

नोट—१ माल्यवान्, सुमाली और माली—ये तीनों सुकेशके पुत्र थे। इन तीनोंने मेरु पर्वतपर जाकर घोर तप किया जिससे ब्रह्माजी प्रसन्न होकर इन्हें वर देने आये। इन्होंने ब्रह्माजीसे वर माँग लिया कि हममें परस्पर प्रेम बना रहे, हमें कोई जीत न पावे, हम अपने शत्रुओंका संहार करते रहें और अजर-अमर हों। वर प्राप्तकर इन्होंने विश्वकर्मासे जाकर कहा कि हमारे निवासके लिये हिमालय, मेरु अथवा मन्दराचलपर शिवभवनके समान बड़ा लम्बा-चौड़ा भवन बना दो। तब विश्वकर्माने बताया कि दक्षिण समुद्रके तटपर त्रिकूट नामका पर्वत है। वही यहाँ कवि कह रहे हैं—*'गिरि त्रिकूट एक सिंधु मँझारी।'* —**'दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः।'** (वाल्मी० ७। ५। २२) फिर विश्वकर्माने बताया है कि उसके पास ही दूसरा बड़ा पर्वत है जिसके बीचके शिखरपर लङ्का नगरी बसी है जो तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी है। यही मानसमें *'अति भारी'* से जना दिया। उसके ऊपर पक्षी भी उड़कर नहीं पहुँच सकते; क्योंकि वह चारों ओरसे मानो टाँकियोंसे छीलकर चिकनाया गया है। यथा—**'शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्नचतुर्दिशि।'**(७। ५। २४) यही मानसमें *'दुर्गम अति'* कहकर जना दिया। विश्वकर्माने बताया है कि मैंने लङ्कापुरीको इन्द्रकी आज्ञासे बनाया था किंतु यहाँ *'बिधि निर्मित'* कहते हैं। दोनोंका समन्वय इस प्रकार हो सकता है कि त्रिकूटाचल विधि-निर्मित और अति दुर्गम है। उसपर जो लङ्का बनी है वह विश्वकर्माने बनायी होगी। अथवा, लङ्का भी विधि-निर्मित है। किसी कल्पमें विश्वकर्माने उसे सँवारा होगा इससे उसने अपनी बनायी कहा हो। फिर राक्षसोंका निवास होनेपर राक्षसोंके विश्वकर्मा मयदानवने उसे फिरसे सजाया हो।

टिप्पणी—२ *'सोइ मय दानव बहुरि सँवारा.....'* इति। (क) *'बहुरि'* का भाव कि प्रथम तो यह ब्रह्माद्वारा निर्मित हुआ, उनकी बुद्धिसे बना। उसीमें फिर मयदानवने अपनी कारीगरी दिखायी; इसीसे लङ्कापुरी तीनों लोकोंसे अधिक सुन्दर है। जैसा आगे कहते हैं—*'भोगावति......'*। (ख) मयदानवने इसे सजाया क्योंकि लङ्का राक्षसोंका किला है और मयदानव राक्षसोंका कारीगर है, जैसे विश्वकर्मा देवताओंके कारीगर हैं। ब्रह्माकी बनायी हुई वस्तुको इसने सँवारा, इससे सूचित हुआ कि यह कैसा भारी शिल्प कारीगर है। *'सँवारा'* अर्थात् विशेष रचना की। लङ्का कैसी है यह आगे कहते हैं—*'कनक रचित.....'* अर्थात् सोनेकी है, सोनेके भवन हैं, मणियोंसे जटित हैं तथा मणियोंके भी महल बने हैं और अपार हैं।

टिप्पणी ३—*'भोगावति जसि.....'* इति। अहिकुलबासा और शक्रनिवासा कहनेका भाव कि संसारमें भोगवती और अमरावती नामकी पुरियाँ हैं। यहाँ किस भोगवती और अमरावतीको कहते हैं? इस सन्देहके निवृत्त्यर्थ *'अहिकुल.....'* कहा। अर्थात् अष्टकुली नागोंकी जो भोगवती पुरी है और इन्द्रके निवासकी जो अमरावती पुरी है वैसी ही परम सुन्दर पुरी यह है। (स्वर्गमें अमरावती और पातालमें नागदेवोंकी पुरीकी

उपमा दी। पृथ्वीपरकी उपमा न दी क्योंकि पृथ्वीमें इसके समान दूसरी उस समय न थी। पुराणोंमें भोगवती और अमरावतीका विस्तृत वर्णन है।)

टिप्पणी—४ *'तिन्ह तें अधिक रम्य······'* इति। (क) भाव कि भोगवती और अमरावतीसे भी यह अधिक सुन्दर है। लङ्का मर्त्यलोकमें है और इसके समान यहाँकी कोई पुरी नहीं है इसीसे इस लोककी किसी पुरीका नाम न दिया। अथवा, भाव कि मर्त्यलोकमें जैसी लङ्कापुरी है वैसी भोगवती और अमरावती भी नहीं हैं; इसीसे यह जगत्‌में विख्यात है। (ख)' *'अति बंका'* अत्यन्त टेढ़ा है। अर्थात् दुर्धर्ष है। कोई इसे दबा या जीत नहीं सकता। यथा—'**त्रिदशैरपि दुर्धर्षा लंका नाम महापुरी। कथं वीर त्वया दग्धा विद्यमाने दशानने॥**' (हनु० ६। ४२) इसी श्लोकका अनुवाद गोस्वामीजीने सुन्दरकाण्डमें किया है—*'कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥'* (५। ३३) श्लोकके 'दुर्धर्ष' का ही *'अति बंका'* अर्थ किया। बंकका यह अर्थ नहीं है कि बनावमें टेढ़ा है। (ग) *'जग बिख्यात नाम'*—तात्पर्य कि भोगवती नागदेवोंके निवाससे विख्यात है और अमरावती शक्रनिवाससे, किन्तु लङ्का किसीके निवाससे विख्यात नहीं है। वह स्वयं अपने सौन्दर्यसे विख्यात है (पुनः भाव कि लोक तीन हैं—स्वर्ग, पाताल और मर्त्य। स्वर्ग और पातालकी पुरियाँ ऐसी सुन्दर नहीं हैं इसीसे वहाँवाले सब जानते हैं और मर्त्यलोकमें तो यह है ही इससे यहाँ विख्यात है)।

दो०—खाई सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिर आव।
कनककोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव॥
हरि प्रेरित जेहि कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस सोइ॥ १७८॥

अर्थ—अत्यन्त गम्भीर (अथाह और दुस्तर) समुद्र उसकी खाई है जो चारों ओर फिरी हुई है। मणिजटित सोनेका बड़ा दृढ़ शहरपनाह वा किलाकी दीवारें हैं जिसकी बनावट वर्णन नहीं की जा सकती। भगवान्‌की प्रेरणासे जिस कल्पमें जो शूरवीर, प्रतापी और अतुलित बलवाला निशाचरराज होता है वही सेनासहित उसमें निवास करता है॥ १७८॥

टिप्पणी—१ (क) *'खाई सिंधु······'*, यथा—*'अति उतंग जल निधि चहुँ पासा।'* (५। ३) (ख) पूर्व कहा था कि *'बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी'*, अब उस *'अति भारी'* का स्वरूप दिखाते हैं कि लङ्कागढ़ इतना भारी है कि सौ योजनका समुद्र (उसके एक दिशाकी) खाई है। (इसी प्रकार चारों ओर अगणित योजन लम्बा समुद्र है।) गढ़के नीचे समुद्र खाई-सरीखा जान पड़ता है। (ग) *'अति गंभीर'* से उसकी दुस्तरता दिखायी; यथा—*'सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिय जलधि गंभीरा॥ संकुल मकर उरग झख जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥'* (५। ५०) (घ) *'कनककोट······'* इति। भाव कि जैसे घर सब सुवर्णके हैं और मणिरचित हैं, वैसे ही शहरपनाह भी मणिजटित स्वर्णका है। आशय यह कि भीतर-बाहर एक रस शोभा है। *'बनाव'* अर्थात् जिस कारीगरीका बना है वह कहते नहीं बनता। यथा—'**स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता।**' (वाल्मी० ७। ५ । २५) '**दृढप्राकारपरिखां हैमैर्गृहशतैर्वृताम्।**'(७। ५। ३०)

टिप्पणी २—*'हरि प्रेरित जेहि······'सोइ'* इति। (क) यह वृत्तान्त किलाके दरवाजेके ऊपर लिखा है। (ख) *'हरि प्रेरित'*—भाव कि जब भगवान्‌की इच्छा लीला करनेकी होती है तब उनकी इच्छासे रावण लङ्कापति होता है। (ग) *'जेहि कलप'*—भाव कि प्रत्येक कल्पमें भगवान्‌का अवतार होता है, यथा—*'कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥'* (घ) *'जोइ जातुधानपति होइ'* का भाव कि जैसे एक कल्पमें जय-विजय यातुधानपति हुए; एकमें जलन्धर यातुधानपति हुआ, एकमें रुद्रगण यातुधानपति हुए और इस कल्पमें भानुप्रताप, अरिमर्दन यातुधानपति हुए, ऐसे ही अनेक कल्प जो हुए और होंगे

उनमें जो यातुधानपति हुए और होंगे वही यहाँ निवास करते हैं एवं करेंगे। कोई नियम नहीं है (कि अमुक ही यातुधानपति होगा)। (ङ) *'सूर प्रतापी……'*—भाव कि यदि इन गुणोंसे युक्त निशाचरपति न हुआ तो वह यहाँ बसने नहीं पाता। देवता लोग राक्षसोंको मारकर इसपर दखल कर लेते हैं। यही बात आगे कहते हैं—*'रहे तहाँ निसिचर………'*। (च) *'जेहि कल्प………'* से सूचित किया कि लङ्का अनादि है।

नोट—इसमें देवता निवास नहीं करते क्योंकि कहा जाता है कि त्रिकूटाचल हड्डीपर स्थित है। (प्र० सं०)

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥ १॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥ २॥
दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि* जाई॥ ३॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गये पराई॥ ४॥
फिरि सब नगर दसानन देखा। गएउ सोच सुख भएउ बिसेषा॥ ५॥

शब्दार्थ—**भारे**=भारी, महान्। रक्षामें=(सँभाल, रक्षा)। **संघारे** (संहार=नाश। **रच्छक** (रक्षक)=पहरेदार। **जच्छपति** (यक्षपति)=कुबेर। **जीव**=प्राण। **पराई**=भाग (गये)।

अर्थ—वहाँ भारी-भारी निशाचर योद्धा रहते थे। देवताओंने उन सबोंको संग्राममें मार डाला॥ १॥ इन्द्रकी प्रेरणासे अब वहाँ कुबेरके एक करोड़ रक्षक रहते हैं॥ २॥ रावणने कहीं यह खबर पायी (तब) सेना सजाकर उसने गढ़को जा घेरा॥ ३॥ बड़ा विकट योद्धा और बड़ी सेना (वा, विकट भटोंकी बड़ी सेना) देख यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गये॥ ४॥ रावणने घूम-फिरकर सब नगर देखा। उसका सोच जाता रहा और वह बहुत सुखी हुआ॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'रहे तहाँ निसिचर………'*। भाव कि इस किलेमें राक्षसोंके रहनेकी आज्ञा ब्रह्माकी है; इसीसे राक्षस इसे अपनी वस्तु समझकर वहाँ रहते थे। देवताओंने उनपर चढ़ाई करके उन्हें मारा यह देवताओंकी जबरदस्ती है। (ख) *'भट भारे'* का भाव कि वे भारी भट थे, इसीसे भागे नहीं, देवताओंसे संग्रामभूमिमें लड़े। *'सुरन्ह'* बहुवचन शब्द देकर जनाया कि समस्त ३३ कोटि देवता मिलकर उनसे लड़े, तब माली-सुमाली (?) मारे गये। देवता इनसे प्रबल थे।

नोट—१ पूर्व १७८ (५) के नोट १ में लिखा जा चुका है कि माल्यवान् आदिने विश्वकर्मासे देवताओंके समान रमणीक भवन बनानेको कहा तब उसने उन्हें लङ्कापुरीका पता बताया था। विश्वकर्माके कहनेसे वे सेवकोंसहित वहाँ जाकर रहने लगे। यथा—'**विश्वकर्मवचः श्रुत्वा ततस्ते राक्षसोत्तमाः। सहस्रानुचरा भूत्वा गत्वा तामवसन् पुरीम्॥**'(वाल्मी० ७। ५। २८) वरके बलसे उन्होंने इन्द्रादिको बहुत सताया तब वे भगवान्‌की शरण गये। भगवान्‌ने राक्षसोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की। यह सब समाचार माल्यवान्‌को मिला। उसने भाइयों आदिसे परामर्श किया। तब माली और सुमालीने सलाह दी कि हमलोग आज ही सब देवताओंको चलकर मार डालें। जिनके उभाड़नेसे विष्णुने ऐसी प्रतिज्ञा की है। बस, सब सेनासहित देवलोकमें गये। इधर श्रीमन्नारायण भी आयुधोंसे सुसज्जित हो गरुड़पर सवार हो वहीं आ उपस्थित हुए। राक्षसोंने घोर युद्ध किया। सुमाली और मालीने भी भयंकर युद्ध किया। मालीकी गदाकी चोटसे गरुड़ विकल हो रणभूमिमें न ठहर सके। गरुड़द्वारा युद्धसे विमुख किये जानेपर भगवान्‌ने उनकी पूँछकी ओर मुख करके मालीपर चक्र चलाकर उसका सिर काट डाला। माल्यवान्‌को गरुड़ने अपने पंखोंके पवनसे उड़ा दिया तब सुमाली भी भागकर लङ्कामें चला गया। भगवान् राक्षसोंको बराबर सताने और मारने लगे तब वे परिवारसहित पातालमें जा बसे। यथा—'**अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं भयार्दिताः। त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः॥**'(वाल्मी० ७। ८। २२)

टिप्पणी २—*'अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे……'*। इति। (क) इन्द्रकी प्रेरणासे वहाँ कुबेरके कोटि रक्षक

* घेरसि—१६६१।

रहते हैं, इस कथनसे जनाया कि इन्द्र मालिक हैं। कुबेर उनकी ओरसे किलेदार हैं। कुबेर यक्षपति हैं इसीसे कुबेरकी तरफसे कोटि यक्ष उस किलेमें रखवालीके लिये रहते हैं, जैसा आगेके *'जच्छ जीव लै गए पराई'* से स्पष्ट है। (ख) ☞राक्षसोंको मारकर इन्द्रने वहाँ निवास न किया, क्योंकि लङ्कामें यातुधानपतिके दलसहित निवासका हुक्म ब्रह्माका है, जैसा पूर्व कह आये हैं। यथा—*'हरि प्रेरित जेहि कलप जोइ जातुधानपति होइ। सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ॥'* इसीसे उन्होंने अपने रक्षक रख दिये। किलेमें रक्षक होने चाहिये, यथा—*'करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।'* (५। ३) अतः रक्षक रखे। (ग) रक्षक कोटि रखनेका भाव कि कोटि राक्षस रहते थे उनको मारा है। अतः उतने ही रक्षक बसाये।

नोट—२ वाल्मीकीयके अनुसार राजा तृणबिन्दु अपनी कन्याको महर्षि पुलस्त्यको सौंप गये। उसकी सेवासे प्रसन्न हो महर्षिने आशीर्वाद दिया कि तूने मेरी वेदध्वनि सुनकर गर्भ धारण किया है अतः तुझे मैं अपने तुल्य पुत्र देता हूँ, जिसका नाम विश्रवा होगा। विश्रवाजी बड़े चरित्रवान् पुत्र हुए। वे पिताके समान तपमें संलग्न रहने लगे। यह देखकर श्रीभरद्वाजजीने अपनी देववर्णिनी नामकी कन्या उनको ब्याह दी। इसीके पुत्र वैश्रवण हुए। पुलस्त्यजीने नामकरण किया और कहा कि यह बालक धनाध्यक्ष होगा। वैश्रवणजीने एक हजार वर्ष कठोर तप किया। कभी जल पीकर, कभी पवन पानकर और कभी निराहार रहकर तप करते रहे। ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। उन्होंने लोकपालत्व और धनाध्यक्षत्व माँगा। ब्रह्माने इन्हें यम, इन्द्र और वरुणके समान चौथा लोकपाल और निधियोंका स्वामी बना दिया और पुष्पक विमान दिया। (उत्तरकाण्ड सर्ग २, श्लोक २८—३३; सर्ग ३, श्लोक १—२०) वैश्रवणने पिताजीसे जाकर सब वृत्तान्त बताकर कहा कि पितामहने मेरे रहनेका प्रबन्ध कुछ नहीं किया। तब विश्रवाजीने उनको विश्वकर्माद्वारा निर्मित लङ्कामें निवास करनेको कहा। यथा—**'शून्या सम्प्रति लङ्का सा प्रभुस्तस्या न विद्यते॥ स त्वं तत्र निवासाय गच्छ पुत्र यथासुखम्।'** (वाल्मी० ७। ३। २९-३०) अ० रा० में भी ऐसा ही है। महाभारतमें ब्रह्माने स्वयं लङ्कापुरीको कुबेरकी राजधानी बना दिया।—मानसकल्पकी कथामें इनसे भेद है। मानसके कुबेर लङ्कामें स्वयं नहीं रहते किन्तु उनके एक करोड़ रक्षक वहाँ रहते थे—*'रच्छक कोटि जच्छपति केरे'* और यक्ष ही वहाँसे प्राण लेकर भाग भी गये—*'जच्छ जीव लै गए पराई।'* इन्द्र देवराज हैं और कुबेर ब्रह्माके वरसे अब देवता हैं, अतः इन्द्रने उन्हें लङ्कामें अपने रक्षक रख देनेको प्रेरित किया और उन्होंने रक्षक रख दिये।

टिप्पणी—३ *'दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई।'* इति। *'असि'*—अर्थात् जैसा ऊपर (*'गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी'* से *'अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥'* तक) लिख आये। किससे खबर मिली यह नहीं बताया; क्योंकि इस विषयपर मुनियोंके विभिन्न मत हैं। कोई नारदसे खबर पाना कहते हैं तो कोई मयदानवसे कहते हैं, क्योंकि इसीने लङ्काको पुनः सँवारा है। इसी मयने अपनी कन्या रावणको दी है। अतएव उसीने कहा भी कि लङ्कापुरी अपनी ही है। तुम्हारे निवासके योग्य है। यक्षोंको हटाकर वहाँ वास करो। इत्यादि अनेक मत होनेसे कविने किसीका नाम न लिखकर सर्वमतरक्षा हेतु *'कतहुँ'* शब्द दिया।

नोट—३ वाल्मीकीयमें लिखा है कि रावणको वर मिलनेके पश्चात् उसका नाना सुमाली यह समाचार पाकर अपने मन्त्रियोंसहित निर्भय होकर पातालसे निकलकर रावणके पास आ उसे गलेसे लगाकर बोला कि बड़े सौभाग्यकी बात है कि मनोवाञ्छित मनोरथ पूर्ण हुआ। विष्णुके भयसे हमलोगोंको दुःखी होकर अपना घरबार छोड़कर रसातलको भाग जाना पड़ा। हमारा वह भय आज दूर हुआ। लङ्का हमारी ही है। हम सब राक्षस उसमें रहते थे, किन्तु अब उसे कुबेरने अपने अधिकारमें कर लिया है—**'अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसोचिता'**……।' (७। ११। ७) पर रावणने नानाको समझा-बुझा दिया कि कुबेर हमारे ज्येष्ठ भाई होनेसे पूज्य हैं, ऐसा न कहो। कुछ दिनोंके बाद प्रहस्तने (जो रावणका मामा भी था) उससे कहा कि शूरोंमें भाईपनेका

विचार नहीं होता। देवता और दैत्य दोनों भाई ही तो हैं पर दोनोंमें शत्रुता चली आ रही है। अतः तुमको भी वही व्यवहार करना चाहिये।—**'सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां'''''।'** (७। ११। १४) तुम चलकर उसे छीन लो।

टिप्पणी—४ (क) ***'सेन साजि'*** का भाव कि जैसे देवता सेना सजाकर निशाचरोंसे लड़ने गये थे, वैसे ही इसने सेना सजाकर गढ़ घेरा। [उसमें एक करोड़ यक्षोंकी सेना रक्षामें रहती है, अतः सेना लेकर जाना उचित ही था।] (ख) ***'देहि बिकट भट बड़ि कटकाई।'*** इति। ***'बिकट भट'*** से जनाया कि इनके सामने यक्ष कुछ भी नहीं हैं। माली-सुमाली भारी भट थे। उनसे देवताओंने संग्राम किया था। पर रावणकी सेनामें सब भट ***'बिकट'*** हैं, इसीसे उनका सामना करनेका साहस न पड़ा। ***'बड़ि कटकाई'*** से जनाया कि सेनामें यक्षोंसे अधिक राक्षस थे। [भानुप्रतापके पास अपार अक्षौहिणी सेना थी वह सब राक्षस हुई है वही सब लेकर चढ़ाई की है। भानुप्रतापके दिग्विजयके प्रसङ्गमें भी कटकई शब्द आया है ***'बिजय हेतु कटकई बनाई।'*** वैसे ही यहाँ ***'कटकई'*** साथ है।] ***'देखि'*** का भाव कि रावण सेना लेकर आया है, यह सुनकर नहीं भागे वरन् शत्रुके सम्मुख आये और शत्रुकी विकट भटोंकी बड़ी भारी सेना देखी तब भागे (ख) ***'जच्छ जीव लै गए पराई।'*** इससे जनाया कि उनका सब द्रव्य लङ्कामें रह गया। यक्ष बड़े द्रव्यवान् होते हैं। वे अपना कुछ द्रव्य न ले जा सके। उन्हें तो प्राणके लाले पड़ गये थे। द्रव्य बचाते तो प्राणोंका बचाना कठिन था। प्राणोंपर आ बनी देख जैसे-तैसे प्राण लेकर भागे। (वाल्मीकीय रावणने कुबेरके पास प्रहस्तको दूत बनाकर भेजा कि लङ्कापुरी हमें दे दो। कुबेरने उत्तर भेजा कि यह नगर और राज्य आदि सब तुम्हारा है, हमारा और तुम्हारा कुछ अलग-अलग नहीं है। तुम इसे भोग करो। फिर पितासे परामर्शकर उनकी आज्ञासे अपने बाल-बच्चों-मन्त्रियों और धनसहित लङ्काको छोड़कर कैलासपर चले गये और अलकापुरी बनवाकर उसमें रहने लगे। और महाभारतके रावणने कुबेरसे युद्ध करके उनको जीतकर लङ्कासे निकाल दिया। तब वे गन्धमादन पर्वतपर जाकर रहने लगे।

टिप्पणी—५ ***'फिरि सब नगर दसानन देखा'*** इति। (क) चारों ओर घूम-फिरकर देखनेका भाव कि कहींसे शत्रुके आनेका मार्ग तो नहीं है। (पुनः इसलिये सब तरफ फिरकर नगरभरको देखा कि कौन स्थान किसके योग्य होगा। कहाँ कचहरी होगी, कहाँ महल, कहाँ सेना और कहाँ परिवारके रहनेके योग्य स्थान हैं, इत्यादि जानकारी और व्यवस्थाके लिये सब नगर देखा।) पुनः, उसकी सुन्दरता, उसकी दुर्गमता इत्यादि देखी, जैसा आगे कहते हैं—***'सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्ह तहाँ रावन रजधानी॥'*** (ख) ***'गएउ सोच।'*** रावणको स्थानका सोच था, अपने रहने योग्य स्थान कहीं नहीं पाता था। (यह भी सोच था कि हमारा परिवार, सेना इत्यादि सबके सुविधापूर्वक रहनेके लिये जगह बहुत चाहिये। सुमाली, मय या जिसने भी खबर दी थी कि यहाँ काफी जगह है, सबके रहनेका सुपास है, वह सत्य पायी।) अतः सुयोग्य स्थान पाकर सोच मिटा। (ग) ***'सुख भयउ बिसेषा।'*** गढ़ विशेष है। यथा—***'गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥'*** (५। २) उसकी विशेषता देख विशेष सुख हुआ। [पुनः, सुख विशेष हुआ क्योंकि एक तो सोच मिटा। दूसरे यह उसकी प्रथम चढ़ाई थी, इसमें सफलता हुई, बिना परिश्रम और बिना युद्धके सुन्दर रमणीक और अति दृढ़, दुर्गम नगर प्राप्त हुआ। सब तरह प्रसन्नता और सुपास होनेसे विशेष सुख हुआ।]

सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥ ६॥
जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥ ७॥
एक बार कुबेरपर* धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥ ८॥
दो०—कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हिसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल चला बहुत सुख पाइ॥ १७९॥

* १६६१ में—यहाँ कैथी रकार 'न' है।

शब्दार्थ—**कुबेर**—इनके जन्मादिकी कथाएँ पूर्व दी जा चुकी हैं। ये विश्रवा मुनिके पुत्र, इन्द्रकी नवों निधियोंके भण्डारी, यक्षोंके राजा, उत्तर दिशाके अधिष्ठाता देवता और संसारभरके धनके स्वामी माने जाते हैं। इनके एक आँख, तीन पैर और आठ दाँत कहे जाते हैं। बड़े तेजस्वी हैं। '**पुष्पकजान**'—यह विमान कुबेरका है जो राजा रघुसे इन्होंने दानमें माँग लिया था। वाल्मी० २। ९। में ब्रह्मासे इनको यह विमान पाना लिखा है। इसमें कई खण्ड हैं। यह घट-बढ़ सकता है। इसीपर श्रीरामचन्द्रजी सेनासहित लङ्कासे श्रीअवध आये थे। पुष्पाकार होनेसे पुष्पक ऐसा नाम पड़ा। वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड सर्ग १५, श्लोक ३६—३९ में, तथा युद्धकाण्ड सर्ग १२४, श्लोक २४—२९ में इसका विस्तृत (वर्णन) है। लङ्काकाण्डके मा० पी० टीकामें कुछ उद्धरण दिया गया है। रावणके छीन लेनेपर राजा रघुसे कुबेरने विनती की तब इन्होंने रावणको मारना चाहा था पर ब्रह्माजीने समझा-बुझा उन्हें रोक दिया। रघुजीने प्रतिज्ञा कर दी कि जब रामचन्द्रजी रावणको मारकर इसे लावें तब कुबेरको दे दें। इसीसे लङ्कासे लौटनेपर यह कुबेरको दे दिया गया।—यह मत विजयदोहावलीसे प्रमाणित होता है।

अर्थ—सहज ही सुन्दर और दुर्गम विचारकर रावणने वहाँ अपनी राजधानी की॥ ६॥ जिसको जैसा योग्य था वैसा घर उसको बाँट दिया। (इस प्रकार उसने) सब निशाचरोंको सुखी किया॥ ७॥ एक बार (उसने) कुबेरपर धावा किया और पुष्पकविमान जीतकर ले आया॥ ८॥ फिर उसने जाकर खेल-ही-खेलमें कैलासको उठा लिया, मानो अपनी भुजाओंके बलको तौलकर बहुत प्रसन्न हो चल दिया॥ १७९॥

टिप्पणी—१ (क) ***'सुंदर सहज अगम अनुमानी'*** इति। ***'सहज अगम'*** है अर्थात् किलेके भीतर किसी प्रकार कोई शत्रु नहीं आ सकता। शत्रुको रोकनेके लिये सेना आदि रक्षकोंकी जरूरत नहीं, वह स्वाभाविक ही ऐसी बनी है कि देवताओंको भी उसके भीतर प्रवेश करना अगम है। सहज देहलीदीपक है। सहज सुन्दर है और सहज ही अगम है। भाव कि रचना करनेसे सुन्दर नहीं है किन्तु स्वरूपसे ही स्वाभाविक ही सुन्दर है। ☞पुनः, ***'सहज अगम'*** का भाव कि ब्रह्माने ही उसे अति दुर्गम निर्माण किया है; यथा—***'बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी।'*** अतः सहज अगम है। और मयदानवने सँवारा है अतः सहज सुन्दर है। [नोट—रावणको ऐसा अनुमान था कि कोई शत्रु यहाँ आ ही नहीं सकता। इसीसे समुद्रमें सेतुका बँधना सुनकर वह ऐसा घबड़ाया था कि उसके दसों मुखोंसे सहसा एकबारगी दस नाम निकल पड़े,—***'सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥ बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। सत्य तोय निधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥'*** (लं० ५)] (ख) ***'कीन्हि तहाँ रावन रजधानी'*** का भाव कि निशाचरपतिके वासके लिये ही ब्रह्माने बनाया है,—***'हरि प्रेरित'*****......'**। राजधानी बनानेके इतने कारण दिखाये—सहज सुन्दर है, सहज अगम है, यह किला राक्षसोंका ही है, ब्रह्माकी आज्ञा है।

टिप्पणी २—(क) ***'जेहि जस जोग'*** से पाया गया कि ब्रह्माने छोटे-बड़े सभी प्रकारके स्थान यहाँ बनाये हैं, यदि सब स्थान एक-से होते तो यथायोग्य स्थान बाँटना कैसे कहते? (ख) ***'सुखी सकल रजनीचर कीन्हें।'*** इसका एक कारण तो यही है कि यथायोग्य स्थान सबको मिला। अर्थात् बड़ोंको बड़ा और छोटोंको छोटा स्थान मिला। यदि बड़ोंको छोटा और छोटोंको बड़ा स्थान देते तो बड़े लोग दुःख मानते। ये सब स्थान स्वर्णके मणिजटित बने हैं, यथा—***'कनक भवन मनिरचित अपारा।'*** तथापि सामान्य-विशेष हैं। सामान्य स्थानोंमें सामान्य मणि और सामान्य सुवर्ण लगे हैं, विशेषमें विशेष लगे हैं। सामान्य विशेष हैं, छोटे-बड़े हैं; इसीसे 'यथायोग्य' कहा। [नोट—इससे जान पड़ता है कि विभीषणजी हरिभक्त तो थे ही, उन्होंने हरिमन्दिर देख अपने लिये ले लिया। उसी मन्दिरका वर्णन सुन्दरकाण्डमें है—***'भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरिमंदिर तहँ भिन्न बनावा॥'***]

टिप्पणी ३—(क) ***'एक बार कुबेर पर धावा'***। भाव कि यक्षोंको तो प्रथम ही जीत चुका है। अब उनके स्वामीपर धावा किया कि उन्होंने हमारे स्थानमें अपने सेवकोंको टिकाया था। दूसरे इससे धावा किया कि इसने सुन रखा था कि उनके पास पुष्पकविमान बहुत अच्छा है, उसको छीन लानेके लिये ही गया।

(ख) *'जीति लै आवा'* से जनाया कि रावण और कुबेरमें भारी युद्ध हुआ, रावणको विजय प्राप्त हुई। अतः जीतकर लाना कहा।

नोट—१ *'एक बार कुबेर पर धावा'* इति। कुबेरपर चढ़ाई करनेका कारण यह था कि इसके अत्याचारोंको सुनकर उन्होंने उसके पास दूतद्वारा संदेश भेजा कि 'आप कुलोचित उत्तम कार्य करें। नन्दनवनके उजाड़े जाने तथा ऋषियोंके वधके कारण देवता तुम्हारे विरुद्ध उद्योग कर रहे हैं। मैंने तपस्याद्वारा शङ्करजीको प्रसन्न करके उनकी मित्रता प्राप्त कर ली है। तुम कुलको कलंक लगानेवाले काम मत करो।'—यह सन्देश सुनकर ही वह आगबबूला हो गया और बोला कि 'तूने जो कहा है वह मैं सहन नहीं कर सकता। तेरी बातोंको सुनकर अब मैं कुबेरके ही कारण चारों लोकपालोंको यमराजके घर भेजूँगा। यह कहकर उसने खड्गसे दूतको मार डाला और निशाचरोंको खानेको दे दिया। फिर अपने मन्त्रियों और सेनासहित कुबेरपर चढ़ाई की। यहाँ घोर युद्ध हुआ जिसका वर्णन सर्ग १४ और १५ में है। अन्तमें रावणने कुबेरके मस्तकपर भारी प्रहार किया जिससे वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब वह जयका स्मारकस्वरूप उनका पुष्पकविमान छीन ले गया। वि० त्रि० का मत है कि लङ्का समुद्रके बीचमें थी अतएव बाहर आने-जानेके लिये यानकी बड़ी आवश्यकता थी। जानता था कि भाई साहबके पास पुष्पक है, अतः उन्हीपर चढ़ाई कर दी।

टिप्पणी—४ (क) *'कौतुक ही कैलास पुनि'* इति। *'पुनि'* अर्थात् पुष्पकको जीत लानेके बाद तब कैलासको उठाने गया। *'कौतुक ही'* =खेलमें, सहज ही। अर्थात् इसके उठानेमें कुछ परिश्रम उसे न हुआ। (ख) *'मनहुँ तौलि निज बाहु बल।'* भाव कि पत्थर (के बाँट) से तौल की जाती है, इसने अपने भुजाओंका बल कैलासरूपी बाँटसे तौला। तौलनेमें एक ओर भारी वस्तु रखी जाती है, दूसरी ओर बाँट। यहाँ कैलासपर्वतरूपी बाँटवाला पल्ला ऊपर उठ गया। इससे जनाया कि भुजबल भारी निकला। (ग) *'चला बहुत सुख पाइ'* अर्थात् बहुत प्रसन्न हुआ कि मैं बड़ा बली हूँ। ☞कैलासके उठा लेनेसे इसको बड़ा सुख हुआ और इसीसे यह बारम्बार कैलास उठानेकी अपनी प्रशंसा करता है, यथा—*'सुनु सठ सोइ रावन बल सीला। हरिगिरि जान जासु भुज लीला॥'* (६। २५। ११) *'हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥'* (६। २८) तथा *'पुनि नभसर मम करनिकर कमलन्हि पर कर बास। सोभत भयो मराल इव संभु सहित कैलास॥'* (६। २२)

नोट—२ कौतुक ही अर्थात् गेंद-सरीखा, यथा—*'निज भुज बल अति अतुल कहउँ क्यों कंदुक ज्यों कैलास उठायो'* (गीतावली लं० ३)। इसीको कवितावलीमें इस तरह कहा है—*'जो दससीस महीधर ईसको बीस भुजा खुलि खेलनहारो। लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमैं सुनि साहस भारो॥'* (क० लं० ३८) कुबेरको जीतकर पुष्पकविमानका ले आना कहकर कैलासको उठाना कहा। इसमें भाव यह है कि पुष्पकपर चढ़कर कैलासको गया। नन्दीश्वरने उसे वहाँ रोका। इसपर उसने क्रोधमें भरकर कैलासको उठा लिया। सहज ही कैलासको उठा लिया इससे विश्वास हुआ कि अब कोई मेरे बलके सामने खड़ा न हो सकेगा। अतएव सुखी हुआ। ☞इस कल्पके रावणका कैलासके नीचे दब जाना नहीं कहा गया।

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥१॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥२॥
अति बल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥३॥
करै पान सोवै षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥४॥
जौं दिनप्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥५॥

शब्दार्थ—**नूतन**=नवीन, नया। **प्रति**=हर एक। **प्रतिभट**=[प्रति (=समान। बराबर, जोड़ वा मुकाबलेका)+भट] मुकाबला करनेवाला; समान शक्तिवाला योद्धा। **जाता**=पैदा हुआ। **तिहूँ पुर**=त्रैलोक्य, तीनों लोकोंमें। **चौपट**=विध्वंस, नष्ट, सत्यानाश।

अर्थ—सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई ये सब नित्य नवीन बढ़ते जाते थे। जैसे प्रत्येक लाभपर लोभ अधिक होता है॥ १-२॥ अत्यन्त बलवान् कुम्भकर्ण ऐसा उसका भाई था कि संसारमें जिसकी जोड़का योधा नहीं पैदा हुआ॥ ३॥ वह (मदिरा) पीता और छः महीने सोता था। उसके जागनेपर तीनों लोक भयभीत हो जाते थे॥ ४॥ यदि वह प्रतिदिन भोजन करता (तो) सब जगत् शीघ्र ही चौपट हो जाता॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) ***'सुख संपति सुत सेन सहाई।'''''*** इति। सुखको प्रथम कहनेका भाव कि सम्पत्ति, सुत आदि जितने गिनाये इन सबकी प्राप्तिमें उसे सुख होता है। अधर्मीको सुख न मिलना चाहिये, यथा—***'करहिं पाप पावहिं दुख'''''*** और रावणको सुख प्राप्त होना लिखते हैं, यह कैसा? समाधान यह है कि भानुप्रताप शरीरमें जो भारी धर्म इसने किये थे उनका फल अब प्राप्त हुआ, यथा—***'जानि सरदरितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥'*** (४। १६) इसी तरह नारदकल्पवाले हरगण जो शापसे रावण हुए उनको नारदका आशीर्वाद था कि ***'निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥'*** (१३५। ९) इससे उस रावणको भी सुख हुआ। (ख) भानुप्रताप शरीरमें राजाको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों प्राप्त थे। यथा—***'अरथ धरम कामादि सुख सेवै समय नरेसु।'*** (१५४) पर इस शरीरमें केवल सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति कही, धर्म और मोक्षकी प्राप्ति नहीं कही; क्योंकि राक्षसतनमें धर्म और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। धर्म हो तो राक्षस ही क्यों कहलायें? (ग) ***'सहाई'***। सुभट, परिवार, मन्त्री आदि ये ही सब 'सहाय' हैं

टिप्पणी २—(क) ***'नित नूतन सब बाढ़त जाई।'*** भाव कि पूर्व जन्मका भारी पुण्य यथा—***'जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग। बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥'*** (१५५) (ख) ***'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई'*** इति। ☞लोभका दृष्टान्त देकर सूचित किया कि जैसे लोभका बढ़ना विकार है वैसे ही रावणके सुख-सम्पत्ति आदिका बढ़ना विकार है। जैसे लोभकी बाढ़का अन्त नहीं है वैसे ही रावणके सुख-सम्पत्ति आदिकी बाढ़का अन्त नहीं। ☞***'नित नूतन सब बाढ़त जाई'*** में ***'सब'*** पदके साथ ***'जाई'*** एकवचन दिया है, चाहिये था कि बहुवचन ***'जाहीं'*** देते। (इसमें कारण यह है कि दूसरे चरणमें ***'लोभ अधिकाई'*** एकवचन है उसीके साहचर्यसे यहाँ भी ***'जाई'*** ही कहा। अथवा,) ***'जाईं'*** बहुवचन है उसे सानुस्वार उच्चारण करना चाहिये। यदि कहो कि दूसरी ओर तो ***'अधिकाई'*** एकवचन है जो सानुस्वार नहीं है तो उसका उत्तर यह है कि ऐसी बहुत-सी चौपाइयाँ इसी ग्रन्थमें हैं। यथा—***'अब सब बिप्र बोलाइ गुसाईं*। देहु धेनु सब भाँति बनाई॥'*** (३३०। ७) वहाँ प्रथम चरणमें अनुस्वार है, दूसरेमें नहीं। (च) ***'प्रतिलाभ'*** का भाव कि जैसे-जैसे लाभ बढ़ता है तैसे-तैसे लोभ बढ़ता है। ☞जैसे सुख-सम्पत्तिकी बाढ़के लिये ***'जिमि प्रतिलाभ लोभ'''''*** का दृष्टान्त दिया वैसे ही रावणके सिरोंकी बाढ़के लिये भी यही दृष्टान्त दिया गया है, यथा—***'काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥'*** (६। १०१। १) विशेष लङ्काकाण्डमें देखिये।

नोट—१ ***'प्रतिलाभ लोभ अधिकाई'*** अर्थात् जैसे-जैसे सुख-सम्पत्ति आदि बढ़ते जाते हैं तैसे-तैसे मनुष्यका लोभ बढ़ता है। उसके जीमें सदा एक-न-एक पदार्थकी कमी ही बनी रहती है जिसके पूरा करनेमें वह लगा रहता है। कितना ही घर भर जाय फिर भी संतोष नहीं होता, हवस नहीं मरती। '९९ का फेर' लोकोक्ति है। जैसे-जैसे वस्तुकी प्राप्ति होती जाती है तैसे-तैसे लालच बढ़ती है कि अमुक वस्तु और हो जाय। यथा—***'कृस गात ललात जो रोटिन को घरबात घरै खुरपी खरिया। तिन्ह सोन सुमेरु से ढेर लहेउ मन तो न भरेउ घर पै भरिया॥'*** इसी प्रकार रावणको ज्यों-ज्यों सुख-सम्पत्ति आदिकी नित्यप्रति प्राप्ति होती है त्यों-त्यों उसे और अधिककी चाह होती है, वह नित्यप्रति उसके बढ़ानेकी चिन्तामें लगा रहता है।—यह भाव भी जनाया।

---

* श्रावणकुंजका पाठ 'गुसाईं' है परन्तु अन्यत्र ऐसे प्रयोग मिलते हैं। यथा—'कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहि काम कोकिल लाजहीं। मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं।' (३२२) इत्यादि।

वि० त्रि०—'**अधर्मेणैधते पूर्वं ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नाञ्जयति समूलं च विनश्यति॥**' अर्थात् पहिले अधर्मसे वृद्धि होती है, तब कल्याण दिखायी पड़ता है, फिर शत्रुओंको जीतता है, अन्तमें मूलके सहित नष्ट हो जाता है। रावणने अधर्मपर पैर रखा है। पहिले घरमें ही छीन-छोर आरम्भ किया। बड़े भाईकी लङ्का छीनी, पुष्पकविमान छीना। इष्टदेवका वासस्थान उखाड़ा। देखनेमें बढ़ोत्तरी होने लगी, यह '**अधर्मेणैधते**' का उदाहरण है। नित्य नया सुख, नित्य नया अर्थलाभ, नित्य नयी कुटुम्बवृद्धि, नित्य नयी मित्र-प्राप्ति, नित्य नयी जीत, नित्य नये प्रताप, नित्य नया सामर्थ्य, नित्य नया आविष्कार और नित्य नयी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। बढ़ोत्तरीकी उपमा देते हैं—'*जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।*' लाभके साथ लोभके बढ़नेकी उपमा देकर दोषका बढ़ना सूचित करते हैं।

टिप्पणी—३ (क) '*अति बल कुंभकरन अस भ्राता*'—यहाँ '*अति बल*' कहकर दूसरे चरणमें '*अति बल*' का स्वरूप दिखाते हैं कि इसके बराबरका बलवान् योद्धा संसारमें नहीं है—'*जेहि कहँ नहिं प्रतिभट जग जाता।*' '*जग जाता*' अर्थात् त्रैलोक्यमें नहीं पैदा हुआ। यहाँ जग=त्रैलोक्य। यथा—'*जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा।*' (तीनों लोक भयभीत हो जाते थे इससे स्पष्ट है कि तीनों लोकोंमें ऐसा बलवान् कोई न था)। (ख) ☞रावणमें बल होना कहा, यथा—'*मनहु तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ।*' '*जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई।*' और कुम्भकर्णमें '*अति बल*' कहते हैं। इससे सूचित किया कि रावणसे कुम्भकर्ण अधिक बलवान् है। यह बात लङ्काकाण्डमें स्पष्ट है। रावणके घूसेसे हनुमान्‌जी न गिरे पर कुम्भकर्णके घूसेसे वे '*घुर्मित भूतल परेउ तुरंता।*' (१७६। ३) देखिये।

प्र० सं०—'*अति बल कुंभकरन अस भ्राता।*'—रावणको इसके बलका बड़ा गर्व था। जब-तब उसके वचनोंसे यह बात स्पष्ट होती है, यथा—'*कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।*' (६। २७) इसके बलका उसको बड़ा भरोसा था। यथा—'*यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥ ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥*' (६। ६१)। '*बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई।*' (७१) ऐसा बली था कि रणभूमिमें अकेला जा खड़ा हुआ तो भी मायाछलसे इसने युद्ध न किया, जैसे रावण और मेघनादने किया था। ('*अस*' शब्द भाईपनके उत्कर्षका बोधक है। वि० त्रि०)

टिप्पणी—४ '*करै पान सोवै षट मासा।*······' इति। (क) '*करै पान सोवै*' का भाव कि मदिरा पान करनेसे निद्राका सुख बहुत मिलता है। निद्रा बहुत आती है। यथा—'*करसि पान सोवसि दिन राती*' (शूर्पणखा-वचन रावणप्रति)। इसीसे मदिरापान करना कहकर तब छः मास सोना कहा। '*पान करना*' मदिरापान करनेका अर्थ देता है, यथा—'*महिष खाइ करि मदिरा पाना।*' (६। ६३) '*मान ते ज्ञान पान ते लाजा।*' (३। २१) प्रथम जो कहा था कि '*माँगेसि नींद मास षट केरी*', अब यहाँ उसीको चरितार्थ करते हैं कि '*करै पान सोवै षट मासा।*' '*जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥*' का भाव कि कुम्भकर्णसे कोई युद्ध क्या कर सके? तीनों लोक तो उसका आहार ही हैं। (कहा जाता है कि उसके जागनेके कई दिन पूर्व ही रावण तीनों लोकोंमें पहरा बिठा देता था कि कोई भागने न पावे।)

टिप्पणी ५—'*जौं दिनप्रति अहार कर सोई*······' इति। भाव कि एक दिनके आहारको विचारकर तो तीनों लोकोंमें त्रास उत्पन्न हो जाता है तब '*दिनप्रति*' अर्थात् नित्यके आहारमें संसार कैसे रह सकता है? ☞इस अर्थकी चौपाई एक बार पूर्व आ चुकी है, यथा—'*जौं एहि खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥*' (१७७। ७) यहाँ पुनः यही बात कहते हैं '*जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥*' यह पुनरुक्ति भी साभिप्राय है। वहाँ ब्रह्माके विस्मयका कारण यह बताया है, उनके विस्मय-(होने-) पर ऐसा कहा है और यहाँ कुम्भकर्णकी बड़ाईपर ऐसा कहते हैं। पुनः, दूसरा समाधान इस पुनरुक्तिका यह है कि ब्रह्माको विस्मय हुआ कि चार प्रहरकी रात्रि सोकर जब जागे तब एक दिन हो, ऐसे-ऐसे दिनमें जो यह रोज आहार करेगा तो संसार उजड़ जायगा और यहाँ कहते हैं कि जब छः महीने सोकर यह जगा तब इसका एक दिन हुआ; ऐसे दिनमें जो यह रोज आहार करे

तो संसारका बहुत जल्द नाश हो जायगा। ☞यहाँ *'बेगि'* चौपट होगा यह कहनेमें भाव यह है कि छः महीनेकी भूखके लिये आहार बहुत चाहिये, पूरा आहार मिले तो संसार नाश हो जायगा। *'अहार कर सोई'* कहकर सूचित करते हैं कि राक्षस इसके लिये ला-लाकर इसे आहार कराते हैं। यदि कहीं वह स्वयं ही उठकर जाकर अपनेसे पकड़-पकड़कर खाने लगे तो तीन दिनमें तीनों लोक उजड़ जायँ।

समरधीर नहि जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥ ६॥
बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥ ७॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई॥ ८॥
दो०—कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥ १८०॥

शब्दार्थ—**बारिदनाद**=मेघनाद। यह मंदोदरीके उदरसे रावणका प्रथम और सबसे बड़ा पुत्र था। जन्मते ही यह मेघवत् गर्जा था अतः मेघनाद नाम पड़ा। दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी सहायतासे इसने निकुम्भिलामें सात भारी यज्ञ कर शिवजीको प्रसन्नकर दिव्य रथ, शर, चाप, शस्त्र और तामसी माया प्राप्त की। इन्द्रको जब ब्रह्माजी छुड़ाने आये तब इसने उनसे बदलेमें यह वरदान पाया कि जब-जब अग्निमें हवन करें तब-तब एक दिव्य रथ इसको प्राप्त हुआ करे, जिसपर जबतक यह सवार रहे तबतक अजय और अमर रहे। लङ्काकाण्डकी टीकामें इसके यज्ञों और वरदानोंकी कथाएँ विशेषरूपसे दी गयी हैं। **कुमुख**=दुर्मुख नामका निशाचर। **कुलिसरद**=वज्रदन्त राक्षस।

अर्थ—(वह) रणधीर (ऐसा था कि) वर्णन नहीं हो सकता। (लङ्कामें) उसके समान अगणित बली वीर थे॥ ६॥ मेघनाद उसका बड़ा पुत्र था, जिसकी योद्धाओंमें प्रथम गणना थी॥ ७॥ जिसके सामने रणमें कोई न (खड़ा) होता था और स्वर्गलोकमें तो सदा भगदड़ ही मची रहती थी॥ ८॥ दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु, अतिकाय ऐसे-ऐसे उत्तम योद्धाओंके समूह-के-समूह थे (जिनमेंसे) एक अर्थात् हरएक अकेले ही जगत्‌भरको जीत सकता था॥ १८०॥

टिप्पणी—१ (क) *'समरधीर नहि जाइ बखाना।'* भाव कि कुम्भकर्णके बलवान् होने, भट होने और समरधीर होनेका बखान तो तब किया जा सके जब किसी भटसे युद्ध हो, परन्तु जब उसकी समानताका वीर ही कोई जगत्‌भरमें नहीं है तब बखान क्या करें? कैसे करें? अतएव *'नहिं जाइ बखाना'* कहा। जब लङ्कामें युद्ध हुआ तब इसकी समरधीरता वर्णन करते हैं यथा—*'मुर्‍यो न मन तन टर्‍यो न टार्‍यो। जिमि गज अर्कफलन्हि को मार्‍यो॥'* (६। ६४) ऐसा समरधीर है। *'अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव। काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव॥'* (६। ६४)—ऐसा बलवान् है और शरीर ऐसा भारी है कि पर्वत उसके शरीरमें ऐसे लगते जैसे हाथीके देहमें अर्कफल लगें अर्थात् पर्वत शरीरमें टकराते हैं तो उसके शरीरको कुछ मालूम भी नहीं होता। (ख) *'तेहि सम अमित बीर बलवाना।'* भाव कि आहारमें इसके समान कोई न था, वीर इसके समान बहुत थे।

नोट—१ पहले तो लिखा कि उसके मुकाबिलेका *'नहिं प्रतिभट जग जाता'* और अब लिखते हैं कि *'तेहि सम अमित बीर बलवाना।'* इन दोनों वचनोंमें परस्पर विरोध देख पड़ता है पर वस्तुतः है नहीं। तात्पर्य यह है कि लङ्कामें उनके जोड़के हैं पर अन्यत्र कहीं नहीं हैं। लड़ाई बाहरवालोंसे की जाती है न कि घरमें ही। *'प्रतिभट'* का अर्थ 'मुकाबिलका शत्रु' है। वि० त्रि० लिखते हैं कि *'सम'* **ईषत्** न्यून अर्थात् 'कुछ कम' के अर्थमें प्रयुक्त होता है।

टिप्पणी—२ *'बारिदनाद जेठ सुत तासू।……'* इति। (क) ☞क्रमसे सबका बल वर्णन करते हैं। प्रथम रावणका बल कहा, तब कुम्भकर्णका बल कहा, उसके बाद विभीषणका बल कहना चाहिये था; किन्तु उनका बल न कहकर बड़े लड़केका बल कहने लगे। कारण कि विभीषणजीकी गणना भटोंमें

नहीं है, उनकी गिनती तो महाभागवतोंमें है, जैसा पूर्व दोहा १७६। ४-५ और १७७ में लिख आये हैं। इसीसे विभीषणका बल न कहा। [रावण उन्हें स्वयं भट न समझता था, पिद्दी वा कादर समझता था, यथा—*'करत राजु लंका सठ त्यागी। होइहि जब कर कीट अभागी॥'* *'सहज भीरु कर बचन दिढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई'* *'सचिव सभीत बिभीषन जाके'* इत्यादि। अतः भटोंमें इनकी गिनती न की गयी। भाईके बाद लड़कोंका नम्बर (गणना) आता है, अतः पुत्रोंमें प्रथम बड़े पुत्रका बल कहते हैं] *'तासू'* का भाव कि जिसका कुम्भकर्ण-ऐसा अति बली भाई है, उसीका जेठा पुत्र मेघनाद है। *'जेठ सुत'* कहनेका भाव कि वर्णन क्रमसे कर रहे हैं, यह सबसे बड़ा है, अतः प्रथम इसके बलका वर्णन करते हैं। फिर इससे छोटे पुत्रों कुमुख आदिका वर्णन करेंगे। (ख) *'भट महुँ प्रथम लीक जग जासू'* इति। अर्थात् जगत्‌भरके वीरोंमें श्रेष्ठ है। भटोंमें प्रथम गणना है, इस कथनका तात्पर्य यह है कि यह न समझो कि रावणके हजारों पुत्रोंमें यह प्रथम है किन्तु तीनों लोकोंके भटोंमें इसकी प्रथम रेखा है। वाल्मीकीय उत्तरकाण्डमें श्रीअगस्त्यजीने रावणवधके पश्चात् श्रीअयोध्याजीमें श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहा था कि रावणवध कोई बड़ी बात न थी। मेघनाद उससे कहीं अधिक प्रबल और पराक्रमी तथा मायावी था, इन्द्रने रावणको परास्त ही कर लिया था। यदि मेघनाद न पहुँच गया होता। उसने पहुँचकर इन्द्रको बाँध लिया तभीसे उसका नाम इन्द्रजित् हुआ।

टिप्पणी—३ (क) *'जेहि न होइ रन सनमुख कोई'* इति। भटोंमें इसकी प्रथम रेखा है, इसी वचनको चरितार्थ करते हैं कि इन्द्रादि देवता जो बड़े भट हैं वे भी उसके सम्मुख नहीं होते। (ख) *'सुरपुर नितहिं परावन होई।'* सुरपुर कहकर सूचित किया कि मेघनादका आगमन सुनकर सारे सुरपुरके सब देवता भाग जाते थे, एक भी वहाँ न रह जाता था। जैसे—*'रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तकेउ मेरु गिरिखोहा॥'* वैसे ही इसका आगमन सुननेपर होता था। नित्य ही भगदड़ मची रहती थी, इस कथनका भाव यह है कि देवता राक्षसोंके वैरी हैं, यथा—*'सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥'* इसीसे राक्षस सदा इनके पीछे पड़े रहते थे। पुत्रका बल कहकर अब छोटे पुत्रोंका बल कहते हैं। ये सब बलमें कुम्भकर्णके समान हैं, यथा—*'तेहि सम अमित बीर बलवाना।'* इनके समान लङ्कामें समूह भट हैं। ☞इसी प्रकार रामदलका वर्णन किया है। यथा—*'ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन सम कोटिन्ह गनै को नाना॥'* (५। ५५। १) (ख) रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद भारी वीर हैं। यथा—*'कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि॥'* (६। २७) अतएव इनके बल पृथक्-पृथक् कहे और सबोंका बल इकट्ठा कहा। (ग) रावण-कुम्भकर्ण और मेघनादकी जोड़का त्रैलोक्यमें कोई नहीं है, यथा—*'रन मदमत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥'* (१८२। १) इति रावणः *'अति बल कुम्भकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥'* इति कुम्भकर्णः और *'जेहि न होइ रन सनमुख कोई।'* इति मेघनादः भाव यह कि अन्य वीरोंकी जगत्‌में जोड़ियाँ हैं, उनके सामने वीर सम्मुख हो सकते हैं पर यह सब वीर ऐसे हैं कि जगत्‌को जीत सकते हैं। (रावणने राज्यकी नींव डाली, कुम्भकर्णने त्रैलोक्यको संत्रस्त किया। मेघनादकी धाक स्वर्गतक जम गयी। (वि० त्रि०)

नोट—२ यहाँ यह शङ्का होती है कि जब एक भट विश्वभरको जीत लेनेके योग्य था तो ये वानरोंके हाथोंसे कैसे मारे गये? इसका समाधान स्वयं ग्रन्थकारने शुकद्वारा सुन्दरकाण्डमें किया है। श्रीरघुनाथजीकी सेनाका वर्णन इसकी जोड़में यों है—*'पूछेहु नाथ कीस कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥ नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥'''''द्विबिद मयंद नील नल अंगदादि बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥ ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥ रामकृपा अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहिं गनहीं॥'* निशाचर लोग जगत् जीतनेमें समर्थ थे और वानर-भालु जगत्‌को तिनकेके समान गिनते थे। संसारमें वे बली तो किसीको समझते ही न थे। पर यह था श्रीरामकृपासे। जगत्‌का अर्थ 'तीनों लोक' लेनेसे यह भाव हुआ और यदि *'जग'* से मर्त्यलोकमात्र लें

तब तो ये *'जग'* के लिये भट हैं और वानर-भालु त्रैलोक्यके लिये भट हैं पर वस्तुतः जगका अर्थ यहाँ 'तीनों लोक' है।

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह के धरम न दाया॥ १॥
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥ २॥
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥ ३॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥ ४॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुधबरूथा॥ ५॥

शब्दार्थ—कामरूप=जैसी कामना करें, जैसी इच्छा हो वैसा रूप धारण कर सकनेवाला। **माया**=कपट, छलमय रचना, इन्द्रजाल, यथा—*'अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन माया॥ भयउ निमिष महँ अति अँधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥ देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खँभार। एकहिं एक न देखहिं जहँ तहँ करहिं पुकार॥'* (६। ४५) *'नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जल धारा॥ नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥ बिष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा॥ बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥ कपि अकुलाने माया देखे।'''''* (६। ५१) *'धरु धरु मारु सुनिय धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना॥ अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर॥'* (६। ७२)। इत्यादि। दाया=दया। **सभाँ**=सभामें। **जूथ** (यूथ)=वृन्द, झुण्ड। **बरूथ**=झुण्ड। **मद**=धन, यौवन-सौन्दर्यसे जो हर्षयुक्त क्षोभ होता है।

अर्थ—सब कामरूप थे और सब आसुरी माया जानते थे, स्वप्नमें भी उनके न धर्म ही था न दया॥ १॥ रावण एक बार सभामें बैठा अपने अगणित परिवारको देखकर॥ २॥ (कि) पुत्र, सेवक, कुटुम्बी और नाती ढेर-के-ढेर थे। (भला) निशाचर जातिको गिनाकर कौन पार पा सकता है (कौन गिना सकता है?)॥ ३॥ (और) सेनाको देखकर स्वाभाविक अभिमानी रावण क्रोध और अभिमानसे भरे हुए वचन बोला॥ ४॥ समस्त निशाचरवृन्दो! सुनो। देववृन्द हमारे शत्रु हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'कामरूप जानहिं सब माया'* इति। भाव कि जैसी माया करते हैं वैसा रूप धरते हैं। जैसे कि भानुप्रतापके यहाँ मायामय रसोई बनानेके लिये कालकेतुने पुरोहितका रूप धारण किया। श्रीसीताजीको हर लानेके लिये रावण यतिरूप बना और श्रीरामजीको छलनेके लिये मारीच कंचन-मृग बना। इसीसे कामरूप और मायाका जानना एक साथ एक ही चरणमें कहे। यही बात सुन्दरकाण्डमें विभीषणजीके लिये सुग्रीवने कही है, यथा—*'जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया'॥* (ख) *'सपनेहु जिन्हके धरम न दाया'*। स्वप्नमें भी धर्म और दया नहीं है इस कथनका भाव यह है कि स्वप्नावस्थामें मनुष्यका मन अपने वशमें नहीं होता है, जाग्रत्‌में अपने वशमें होता है, इधर-उधर जायँ तो समझाकर लौटा सकते हैं पर राक्षसोंके मनमें तो स्वप्नमें भी धर्मादि नहीं हैं। तात्पर्य कि ये स्वाभाविक अधर्मी और निर्दयी हैं। धर्म नहीं है अर्थात् पापी हैं। दया नहीं है अर्थात् हिंसक हैं। यथा—*'कृपारहित हिंसक सब पापी।'* धर्म बाहरके हैं, दया अन्तःकरणकी। बाह्याभ्यन्तरके भेदसे दया और धर्म दो बातें कहीं (नहीं तो दया भी धर्म ही है)।

वि० त्रि०—माया कुहक विद्या है, जिससे प्रकृतिके मर्मको जानकर बड़े-बड़े चमत्कारोंका प्रादुर्भाव होता है। आजकल भी उस विद्याका दौर-दौरा है, नहीं तो '**तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्**॥' (अर्थात्) कर्म वही है जिससे बन्धन न हो, विद्या वही है जिससे मुक्ति हो, अन्य कर्म तो आयासके लिये है और अन्य विद्या शिल्पकी निपुणतामात्र है।

१८० (१) से यहाँ *'सपनेहुँ जिन्ह के धरम न दाया।'* तक '**अधर्मेणैधते**' कहा। आगे '**ततो भद्राणि पश्यति**' कहते हैं।

टिप्पणी—२ (क) *'दसमुख बैठ सभाँ एक बारा'* इति। *'एक बारा'* का भाव कि सभामें तो रोज

ही बैठा करता था और परिवारको नित्य ही देखता था पर यहाँ चर्चा उस दिनकी करते हैं जिस दिन सभामें बैठ परिवारको देखकर उसने जगत्‌में उपद्रव करनेका हुक्म दिया। (ख)—*'देखि अमित'* से जनाया कि परिवार इतना बढ़ गया है कि गिनती नहीं की जा सकती। परिवारका नित्य नवीन बढ़ना पूर्व कह आये, यथा—*'सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥ नित नूतन सब बाढ़त जाई॥'* ☞आगे अपना परिवार गिनाता है *'सुत·····'*।

टिप्पणी—३ *'सुत समूह·····'* इति। *'समूह'* का अन्वय सुत-जन-परिजन-नाती तीनोंके साथ है। निशाचर जातिका पार कौन गने अर्थात् निशाचरजाति अपार है, कोई गिन नहीं सकता। रावणकी बाढ़को लोभकी उपमा दी थी —*'नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥'* लोभका पार नहीं है, इसी तरह निशाचरोंकी जातिका पार नहीं है।

नोट—१ *'गनै को पार·····'* इति। वाल्मीकीयमें इस सम्बन्धमें कथा है कि राक्षसपत्नियाँ गर्भवती होते ही पुत्र जनेंगी और वह पुत्र जन्मते ही सयाना हो जायगा। इसीसे राक्षसोंकी गिनती नहीं हो सकती। वरकी कथा इस प्रकार है—विद्युत्केश राक्षसकी पत्नी सालकटंकटा पुत्रको जन्म देते ही उसे मन्दराचलपर छोड़कर पुनः पतिके पास जाकर विहार करने लगी। उस बालकके रोनेका शब्द उधरसे आकाशमार्गसे जाते हुए शिव-पार्वतीजीने सुना। उसे देखकर उमाजीको दया लगी। उन्होंने शङ्करजीसे कहकर उसको उसी दिन माताकी उम्रका और अमर करा दिया। पार्वतीजीने उसी समय राक्षसियोंको यह वर दिया कि वे गर्भ धारण करते ही बालक जनें और वह बालक तुरन्त माताके समान उम्रवाला हो जाय। यथा—**'सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च। सद्य एव वयः प्राप्तिर्मातुरेव वयः समम्॥'** (वाल्मी० ७। ४। ३१)

टिप्पणी—४ (क) *'सेन बिलोकि सहज अभिमानी·····'* इति। भाव कि रावण स्वाभाविक ही अभिमानी है, उसपर भी अब उसने अपनी अपार सेना देखी; इससे उसका अभिमान और भी अधिक हो गया। क्रोध और मद रावणके वचनोंमें आगे स्पष्ट हैं, अतः *'क्रोध मद सानी'* कहा। *'सेन बिलोकि'* से बाहरी अभिमानका हेतु कहा और *'सहज अभिमानी'* से अन्तःकरणका अभिमान कहा। इसी तरह क्रोध और मद अन्तर्वृत्तियाँ हैं और क्रोधमदसाने वचन कहना बाह्य वृत्ति है। इस तरह जनाया कि उसका भीतर-बाहर क्रोध और मदसे आक्रान्त है। (ख) *'सुनहु सकल रजनीचर जूथा।·····'* इति। वैरी हैं क्योंकि राक्षसोंके किलेपर दखल कर लिया था, राक्षसोंको मार डाला था। जैसे देवताओंकी जातियाँ बहुत हैं, वैसे ही निशिचर जातियाँ बहुत हैं। सब जातियोंके यूथ-यूथ बैठे हैं, इसीसे रावण कहता है कि *'सुनहु सकल रजनीचर जूथा।'* *'बिबुध बरूथा'* कहकर समस्त देवताओंको अपना वैरी जनाया। (देख लिया कि अपना परिवार ही लङ्काकी रक्षा करनेमें समर्थ है, अतः सम्पूर्ण सेनाको आज्ञा देता है। (वि० त्रि)

ते सनमुख नहिं करहिं* लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥६॥
तिन्ह† कर मरन एक बिधि होई। कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई॥७॥
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥८॥

दो०—छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहि मिलिहहिं आइ।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं भली भाँति अपनाइ॥१८१॥

अर्थ—वे सम्मुख लड़ाई नहीं करते, बलवान् शत्रुको देखकर भाग जाते हैं॥ ६॥ उनका मरण एक ही प्रकार हो सकता है। मैं उसे अब समझाकर कहता हूँ, सुनो॥ ७॥ ब्रह्मभोज (ब्राह्मण-भोजन), यज्ञ, होम, श्राद्ध तुम इन सबोंमें जाकर विघ्न डालो॥ ८॥ भूखसे पीड़ित (दुर्बल) और निर्बल होकर देवता सहज ही (स्वाभाविक ही) आ मिलेंगे तब उनको या तो मार डालूँगा या भलीभाँति अपने वशमें करके छोड़ दूँगा॥ १८१॥

* 'हिं' था पर अनुस्वारपर हरताल लगा है। † पोथीमें 'तेन्ह' है।

टिप्पणी—१ (क) *'ते सनमुख नहिं करहिं लराई·····'*, यथा—*'देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥'*, *'जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई॥'*, *'रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तकेउ मेरु गिरि खोहा॥'* इत्यादि (ख) *'देखि सबल रिपु जाहिं पराई'* का भाव कि देवता कायर नहीं हैं, शत्रुको प्रबल देखकर भाग जाते हैं। नीति यही कहती है कि प्रबल शत्रुसे युद्ध न करे, यथा—*'प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।'* (६। २३) यह *'मद सानी'* वाणी है। (ग) *'तिन्ह कर मरन एक बिधि होई।'* मरणका भाव कि शत्रुको मार डालना चाहिये, छोड़ना न चाहिये, यथा—*'रिपु रिन रंच न राखब काऊ'* पुन: यथा **'ऋणशेषं व्याधिशेषं शत्रुशेषं तथैव च। पुनः पुनः प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत्॥'** अर्थात् ऋणशेष, व्याधिशेष, शत्रुशेष ये तीनों शेष बढ़ा ही करते हैं अत: इन्हें सर्वथा निर्मूल कर देना चाहिये। इसीसे देवताओंके मरणका उपाय बताता है। देवताओंने हमारी लङ्का जबरदस्ती ले ली थी। उसका बदला तो हो गया कि हमने लङ्कापर अधिकार कर लिया, रह गया मरण, उन्होंने राक्षसोंको मार डाला था—*'ते सब सुरन्ह समर संहारे'* इसका बदला बाकी है। (उनको मारनेसे मारनेका बदला चुकेगा) उसका यत्न बताता है। ☞यह 'क्रोधसानी' वाणी है। (घ) *'द्विज भोजन मख होम सराधा।·····'* इति। ब्राह्मण-भोजन सब धर्मोंका पोषक है—मखका, होमका, श्राद्धका इत्यादि। इसीसे सबके आदिमें इसे लिखा। देवता दो प्रकारके हैं। एक तो इन्द्रादि, दूसरे पितृदेव। मख और होम तो इन्द्रादि पाते हैं और श्राद्ध पितृदेव पाते हैं।

वि० त्रि०—मर्त्यलोक और देवलोकमें एक व्यापार चलता है। पूर्वकालमें यज्ञके सहित प्रजाकी सृष्टि करके प्रजापतिने कहा कि इसी यज्ञसे तुम लोग बढ़ोगे, यह तुम्हारे लिये कामधेनु होगा। यज्ञसे तृप्त होकर देवता तुम लोगोंको तृप्त करेंगे। तबसे यह व्यापार ब्रह्मभोज, यज्ञ, होम और श्राद्धके रूपमें चल पड़ा है। आहुतिमें दिये हुए अन्नसे अमृत बनता है, उसीसे देवता पुष्ट होते और मर्त्यलोकका कल्याण करते हैं।

टिप्पणी—२ *'छुधाछीन बलहीन·····'* इति। (क) *'सहजहि'* का भाव कि अभी तो ढूँढ़े भी नहीं मिलते किन्तु तब अपनेसे आकर मिलेंगे। ☞यहाँ देवताओंके विषयमें *'मारिहौं कि छाड़िहौं'* वध करना अथवा छोड़ना, दो बातें कहीं। क्योंकि नीतिशास्त्रमें यही लिखा है कि शत्रुको वध कर डाले नहीं तो अपने अधीन कर रखे। शत्रु स्वतन्त्र न रहने पावे। वध मुख्य है, इसीसे वधको प्रथम कहा। छोड़ना गौण है, अत: उसे पीछे कहा। गिरिधरकविजीने भी लिखा है—*'जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग। जौं संग राखें ही बने तौ करि राखु अपंग॥'* (ख) *'भली भाँति अपनाइ'* अर्थात् सबोंको सेवक बनाकर रखूँगा। जैसा कि नाटक इत्यादिमें कहा है—**'इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारि प्रतीहारकं चन्द्रं छत्रधरं समीरवरुणौ संमार्जयन्तौ गृहान्। पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं किं मद्गृहे नेक्षसे······'** (ह० ना० ८। २३) अर्थात् रावण गर्वसे अंगदसे कहता है कि इन्द्र तो मेरा फूलमाली है, सूर्य मेरे द्वारका ड्योढ़ीदार है, चन्द्रमा मेरे छत्रका धारण करनेवाला है, पवन और वरुण मेरे झाड़ूदार हैं, अग्निदेव मेरा रसोइया है। क्या तू इसे नहीं देखता? पुन: यथा—*'कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥'*, *'दिगपालन्ह मैं नीर·····।'* (६। २८)

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख बलु बयरु बढ़ावा॥१॥
जे सुर समरधीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥२॥
तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥३॥
एहि बिधि सबही अज्ञा दीन्ही। आपुन* चलेउ गदा कर लीन्ही॥४॥
चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥५॥

* आपनु—१६६१। १८२ छंदमें 'आपुन उठि धावै' है। 'आपनु' का अर्थ आप ही हो सकता है। नु=निश्चयेन।

शब्दार्थ—**हँकरावा**=बुलवाया। **सिख**=शिक्षा। **लरिबे**=लड़ने, लड़ाई। **आनेसु**=ले आना। **काँधी-काँधना**=कंधे वा सिरपर धरना, स्वीकार करना, अङ्गीकार करना, मानना, शिरोधार्य करना। **डोलति**=हिलती है। **श्रवहिं** (स्रवहिं)=पात होते हैं, गिर जाते हैं। **रवनी**=सुन्दरी, स्त्री। **सुररवनी**=देवबधूटियाँ।

अर्थ—फिर मेघनादको बुलवा भेजा और शिक्षा देकर उसके बल (उत्साह) और वैरको उत्तेजित किया*॥ १॥ जो देवता समरमें धीर और बलवान् हैं और जिन्हें लड़नेका अभिमान है॥ २॥ उन्हें लड़ाईमें जीतकर बाँध लाना। पुत्रने उठकर पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य किया†॥ ३॥ इसी प्रकार उसने सभीको आज्ञा दी। स्वयं भी चला। हाथमें गदा ले ली॥ ४॥ दशमुख रावणके चलनेपर पृथ्वी हिलने लगती थी। उसके गर्जनसे देवताओंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते थे॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) ***'पुनि हँकरावा'*** से जनाया कि मेघनाद वहाँ नहीं था, जब सब सभा जुटी थी और सबको उसने समझाया था तथा शिक्षा दी थी कि किस प्रकार देववृन्द वशमें होंगे। यदि मेघनाद भी सभामें रहा होता तो वही शिक्षा उसको देनेका कोई प्रयोजन न होता। (ख) ***'दीन्ही सिख बलु बयरु बढ़ावा।'*** इति ☞यह शिक्षा सब निशिचरोंको दी थी। ***'सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥'*** यह वैर बढ़ानेकी शिक्षा है और ***'द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥'*** इससे देवता निर्बल हो जायँगे, राक्षसोंका बल अधिक हो जायगा; अतएव यह 'बल' बढ़ानेकी शिक्षा है। (ग) ***'जे सुर समरधीर बलवाना।.....'*** का भाव कि निर्बल देवता तो सबल रिपुको देखकर भाग जाते हैं, यथा—***'ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥'*** जो धीर हैं, समरमें भागते नहीं, डटे रहते हैं और युद्धके अभिमानी हैं, इन वचनोंसे उनके मनकी और ***'बलवाना'*** से उनके तनकी दृढ़ता कही। वचनका हाल कुछ न कहा क्योंकि वीर वचनसे कुछ नहीं कहते, यथा—***'सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।'*** (२७४)

नोट—१ सभामें जो शिक्षा निशाचरोंको दी गयी वह सामान्य शिक्षा है और सामान्य देवताओंके वश करनेके विषयमें है। ब्रह्मभोज, यज्ञ, होम, श्राद्ध आदिमें बाधा डालनेका काम उनको सौंपा गया और मेघनादको जो बुलाया गया वह समरधीर बलवान् देवताओंसे लड़नेके लिये। इसीसे पूर्व उसकी आवश्यकता भी न थी।

नोट—२ ***'दीन्ही सिख बलु बयरु बढ़ावा'*** इति। शिक्षा दी कि युद्धमें शत्रुको वशमें करनेके साम, दाम, भय और भेद—ये उपाय हैं। व्यूहरचना किस प्रकार करनी चाहिये और उसके तोड़नेके उपाय इत्यादि। मायासे काम कहाँ लेना चाहिये, छल-बल भी कर सकते हैं, इत्यादि जब जहाँ जैसा काम पड़े वैसा करनेमें संकोच न करना। अपनी जीत जैसे बने वैसे करना। ये भाव भी शिक्षामें आ सकते हैं जो लोगोंने कहे हैं।

नोट—३ ***'बयरु बढ़ावा'***—यों कि सुर और असुरका वैर स्वाभाविक अनादि कालसे चला आता है। देवता सदा छल करते आये। जैसे क्षीरसागर मथनेके समय छल करके सब अमृत पीकर अमर हो गये। लङ्का हमलोगोंकी प्राचीन राजधानी है सो उन्होंने अवसर पा छीन लिया था इत्यादि। बैजनाथजी लिखते हैं कि यह सब समझाया कि यह राजनीति है कि शत्रुको न छोड़ना चाहिये नहीं तो वह एक-न-एक दिन अवश्य घात करेगा।

टिप्पणी—२ (क) ***'तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी'*** ऐसी आज्ञा अन्य राक्षसोंको न दी थी, क्योंकि इसका सामर्थ्य उनको न था। मेघनाद यह काम करनेको समर्थ है, इससे इसको यह आज्ञा दी। ***'आनेसु बाँधी'*** यह समरधीर अभिमानी बलवान् देवताओंको लाकर हाजिर करनेका उपाय बताया कि उनको जीतकर बाँध लाना, छोड़ न देना, जैसे अन्य निशाचरोंको भगोड़े देवताओंके हाजिर लानेका उपाय बताया था कि ब्रह्मभोजादिमें विघ्न करो तो ***'छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहि मिलिहहिं आइ।'*** [वे निर्बल

*अर्थ—'शिक्षा और सेना दी और वैर बढ़ाया'—(वै०)। †अर्थ—'पुत्र! उठकर पिताकी आज्ञाका पालन कर' (वै०)।

हैं, अतः स्वयं आकर मिलेंगे। ये अभिमानी हैं, बाँधकर पकड़ लानेपर मिलेंगे। (बाँध लानेमें भाव यह भी है कि इन्हें बँधा देखकर ब्रह्माजी छुड़ाने आवेंगे और बदलेमें वरदान देंगे। वि० त्रि०)]। (ख) *'आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही'* इति। यहाँतक तीन बातें कही गयीं। सेनाको देवताओंकी जीविका नाश करनेकी आज्ञा दी। मेघनादको उनके बाँध लानेकी आज्ञा दी और स्वयं देवताओंको मारनेके लिये गदा लेकर चला।

वि० त्रि०—रावणने तीन विधिसे कार्य आरम्भ किया। देवताओंको रसद न मिलने पावे, इसलिये सेनाको मर्त्यलोक भेजा। इन्द्रादिसे युद्धके लिये मेघनादको भेजा। अन्य देवताओंकी सहायता इन्द्रको न मिलने पावे, इसलिये उनके लोकोंपर स्वयं रावणने आक्रमण किया।

नोट—४ *'चलत दसानन डोलति अवनी'* इति। रावणके रणमदमत्त होकर चलनेपर धरती हिलती है; इसके विषयमें स्वयं पृथ्वीके वचन हैं कि *'गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥'* पुनः, *'अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥ सकल धर्म देखै बिपरीता। कहि न सकै रावन भय भीता॥'* (१८३) मंदोदरीने स्वयं कहा है *'तव बल नाथ डोल नित धरनी।''''सेष कमठ सहि सकहिं न भारा॥'* (६। १०३) और रावणने भी कहा है—*'जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥ सोइ रावन जग बिदित प्रतापी।'* (६। २५) भक्ति तथा कथाके योगसे तो यदि कैलासका उठाना विश्वास कर सकते हैं तो इसके चलनेसे पृथ्वीका हिलना तो कोई बड़ी बात नहीं है। यहाँ दूसरा उल्लास अलङ्कार है!

टिप्पणी—३ *'गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी'* इति। यह बात श्रीपार्वतीजीके शापसे पूर्वकी है। क्योंकि श्रीपार्वतीजीके शापसे देवताओंकी स्त्रियोंके गर्भ धारण नहीं होता तब गर्भ गिरनेकी बात ही कहाँ? [यहाँ रावणकी बाढ़ (उन्नति) और देवताओंके तेज-प्रतापकी अवनतिका समय है। इससे देवाङ्गनाओंके गर्भ गिरे, देवसेनाकी संख्या बढ़ने नहीं पाती और राक्षस-परिवार दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता गया। जब रावणके अवनतिका समय आया तब श्रीहनुमान्‌जीद्वारा इसका बदला चुका। उनके गर्जनसे निशाचरियोंके गर्भ गिर जाते थे, निशाचर-सेना न बढ़ पाती थी। यथा—*'चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥'* (५। २८)]

नोट—५ पार्वतीजीके शापका प्रसंग वाल्मी० १। ३६ में इस प्रकार है कि जब तारकासुरसे पीड़ित हो देवताओंने ब्रह्माजीसे पुकार की और उन्होंने बताया कि भगवान् शंकरके वीर्यसे उत्पन्न बालकके हाथसे ही उसकी मृत्यु होगी, तुम उपाय करो कि शंकरजी पार्वतीजीका पाणिग्रहण करें। देवताओंने उपाय किये। विवाह हुआ। यह सब कथा मानसमें पूर्व आ चुकी है। तत्पश्चात् हर-गिरिजा-विहारमें सैकड़ों वर्ष बीत गये। देवता घबड़ाये। उन्होंने विहारमें बाधा डाली। जाकर प्रार्थना की। तब महादेवजीने अपने तेजका त्याग किया जिसे अग्नि आदिने धारण किया और उससे कार्तिकेय उत्पन्न हुए। देवताओंने जाकर उमा-शिवजीकी पूजा की। उस समय उमाने क्रोधमें आकर देवताओंको शाप दिया। यथा—**'अथ शैलसुता राम त्रिदशानिदमब्रवीत्॥ २१॥ समन्युरशपत्सर्वान् क्रोधसंरक्तलोचना। यस्मान्निवारिता चाहं संगता पुत्रकाम्यया॥ २३॥ अपत्यं स्वेषु दारेषु नोत्पादयितुमर्हथ। अद्यप्रभृति युष्माकमप्रजाः सन्तु पत्नयः॥'** (२२॥ वाल्मी० १। ३६) अर्थात् श्रीपार्वतीजीकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने देवताओंको इस तरह शाप दिया—मैं पुत्रकामनासे पतिके साथ थी। तुमने आकर रुकावट डाली। अतः तुम लोग भी अपनी पत्नियोंसे पुत्र उत्पन्न न कर सकोगे। अबसे तुम्हारी स्त्रियाँ पुत्रहीन होंगी। शिवपु० रुद्रसंहिता अ० २ में कोपके वचन ये हैं—**'रे रे सुरगणास्सर्वे यूयं दुष्टा विशेषतः। स्वार्थसंसाधका नित्यं तदर्थं परदुःखदाः॥ १४॥ स्वार्थहेतोर्महेशानमाराध्य परमं प्रभुम्। नष्टं चक्रुर्मद्विहारं वन्ध्याऽभवमहं सुराः॥ १५॥''''अद्यप्रभृति देवानां वन्ध्या भार्या भवन्त्विति॥''''१८॥''''**'।

रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥ ६॥
दिगपालन्हके लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥ ७॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी*॥ ८॥
रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा॥ ९॥

शब्दार्थ—**सकोहा**=क्रोधयुक्त, सकोप। **तके**=(को) शरण ली। **दिगपाल** (दिक्पाल)—दिशाओंके रक्षक (आगे इनके नाम कहे हैं। दसों दिशाएँ और उनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें दोहा (२८। १) मा० पी० भाग १ देखिये। **सूने**=खाली। **सिंघनाद** (सिंहनाद)=सिंहका-सा गर्जन वा शब्द। **पचारी** (प्रचारी)=ललकारकर। **मद**=मद्य=मदिरा।-घमण्ड।

अर्थ—रावणको क्रोधयुक्त आता सुनकर देवताओंने सुमेरु पर्वतकी गुफाओंकी शरण ली। (उनमें जा छिपे)॥ ६॥ लोकपालोंके समस्त सुन्दर लोकोंको रावणने खाली पाया॥ ७॥ बारंबार सिंहके समान भारी गर्जनकर और देवताओंको गालियाँ दे-देकर ललकारकर॥ ८॥ वह लड़ाईके मदसे मतवाला तीनों लोकोंमें दौड़ा फिरता था। अपनी जोड़का योद्धा ढूँढ़ता था। (पर) कहीं न पाया॥ ९॥

नोट—१ *'देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा।'* से जनाया कि सुमेरुपर बहुत बड़ी-बड़ी और अगणित गुफाएँ हैं जिनमें सब छिप जाते हैं और रावण उन्हें ढूँढ़ नहीं पाता, इसीसे सब वहीं जाकर छिपते हैं। सुमेरुपर ही ब्रह्माकी कचहरी कही जाती है। जब कोई देवता सामने न आये तब वह उनके लोकोंके भीतर गया तो वहाँ सन्नाटा पाया जैसा आगे कहते हैं।

टिप्पणी—१ *'दिगपालन्हके लोक सुहाए'* इति। *'सुहाए'* का भाव कि ये लोक ऐसे सुन्दर हैं कि इन्हें छोड़नेको कभी जी नहीं चाहता, ये छोड़ने योग्य नहीं हैं तब भी रावणके डरसे वे इन्हें भी छोड़कर चले गये। ☞(रावणका डर सबके हृदयमें कैसा अधिक है यह यहाँ दिखाया कि देवता उसके सामने भोग-विलाससे विरक्त हो जाते हैं)।

टिप्पणी—२ (क) *'देइ देवतन्ह गारि पचारी'*। गाली देता है, ललकारता है जिसमें क्रोधवश होकर सामने आ जावें (जैसे भीमसेनकी ललकारपर दुर्योधन अपना मरण निश्चय जानकर भी लक्ष्मीको तिरस्कृत करके व्यास-सरोवरसे बाहर निकल आया था। वीर शत्रुकी ललकार नहीं सह सकते)। पर कोई प्रकट नहीं होता (इससे जनाया कि देवताओंका मान-मर्ष आदि सब जाता रहा था, यथा—*'तुम्हरे लाज न रोष न माषा'* नहीं तो गाली और ललकार सुनकर अवश्य सामने आते)। (ख) *'रन मदमत्त फिरइ जग धावा॥'''*'। भाव कि देवताओंके यहाँ हो आया। वे सब भाग गये। मर्त्यलोकमें कोई नहीं है। इसीसे कहा कि *'प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा।'* इसी तरह कुम्भकर्णकी जोड़का संसारमें कोई नहीं है यह कह आये हैं, यथा—*'अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥'* (१८०। ३) [*'जग धावा'* से जनाया कि जहाँ कहीं किसीसे सुनता है कि कोई प्रतिभट है वहीं दौड़ा जाता है पर वहाँ जानेपर कोई मिलता नहीं। *'रनमदमत्त'*—यहाँ रणको मदिरा कहा। मद्यपानसे जैसे कोई मतवाला हो जाय तो उसे और मद्यपानकी इच्छा होती है वैसा ही रावणका हाल है। यह कुबेरादिको जीत चुका है। रण-मदसे मतवाला हो रहा है। उसे यही सूझता है कि और कोई मिले जिससे लड़ूँ।]

नोट—२ *'सुर पुर नितहि परावन होई', 'सूने सकल दसानन पाए'* इति। इसी प्रसंगसे मिलता हुआ एक प्रसंग यह है कि एक बार जब ब्रह्मर्षि संवर्त समस्त देवताओंके साथ राजा मरुतको यज्ञ करा रहे थे उसी समय रावण वहाँ पहुँचा। उसे देख इन्द्र मोर, धर्मराज काक, कुबेर गिरगिट और वरुण हंसका एवं अन्य देवता अन्य पक्षियोंका रूप धारण कर उड़ गये। यथा—'**इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः। कृकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत्॥ ५॥ अन्येष्वपि गतेष्वेवं देवेष्वरिनिषूदन।**' रावणके चले जानेके पश्चात् जिन-

* प्रचारी—पाठान्तर

जिन पक्षियोंका रूप धरकर वे बचे थे उन-उनको उन्होंने वर दिया। तभीसे मयूरकी चन्द्रिकापर सहस्र नेत्र शोभित होने लगे, कौवे किसी रोगसे अथवा अपनेसे नहीं मरते इत्यादि। (वाल्मी० ७ सर्ग १८)

रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥ १०॥
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा॥ ११॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्त्ती नर नारी॥ १२॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥ १३॥

दो०—भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीकमनि* रावन राज करै निज मंत्र॥
देव जच्छ गंधर्ब नर किन्नर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि॥ १८२॥

शब्दार्थ—अधिकारी=जिसको लोक-व्यापार करनेका अधिकार है—(वै०)।=जिनको लोकपालनका वा लोकमें किसी विशेष कार्यके करनेका स्वत्व वा पद या अधिकार प्राप्त है। **मंडलीकमनि**=सार्वभौम, सम्राट्। **पंथहि लागा**=राहमें लगा अर्थात् सबकी राह रोकी, कोई अपने अधिकारका व्यापार नहीं करने पाता—(वै०)। **मंत्र**=मति, इच्छा, विचार वा नियम। **निज मंत्र**=स्वेच्छानुसार। यही Dictatorship (डिक्टेटरशिप) है। मनमाना करना ही 'निज मन्त्र' राज्य करना है।

अर्थ—सूर्य, चन्द्रमा, पवन, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यमराज इन सब लोकपालों और किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग सभीके पीछे (रावण) हठपूर्वक लगा॥ १०-११॥ ब्रह्माकी सृष्टिमें जहाँतक देहधारी स्त्री-पुरुष थे वे सब रावणके आज्ञाकारी (अधीन) थे॥ १२॥ सभी डरके मारे उसकी आज्ञाका पालन करते हैं और नित्य ही आकर उसके चरणोंमें नम्रतापूर्वक प्रणाम करते हैं॥ १३॥ उसने विश्वभरको अपनी भुजाओंके बलसे वशमें कर किसीको स्वतन्त्र न रखा। सब मण्डलीकोंमें शिरोमणि सार्वभौम सम्राट् रावण अपने मन्त्रके अनुसार राज्य करता था। देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागकी कन्याओंको तथा और भी बहुत-सी सुन्दर उत्तम स्त्रियोंको अपने बाहु-बलसे जीतकर ब्याह लीं॥ १८२॥

टिप्पणी—१ (क) रवि, शशि, पवन, वरुण, धनधारी (=धनद, कुबेर), अग्नि, काल, यम ये अष्ट लोकपाल हैं। (ख) ☞ *'आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही'* से लेकर *'जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि'* तक रावणका दिग्विजय वर्णन किया। आगे मेघनादका विजय कहते हैं।

नोट—१ कुबेरको सर्वप्रथम जीतकर पुष्पक ले आया था। उस समय चार लोकपाल प्रधान थे। इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर। यमलोकमें भी भारी युद्ध हुआ। यमराज सूर्यपुत्र हैं। वाल्मी० ७, सर्ग २०, २१, २२ में युद्धका वर्णन है। यम कालदण्ड छोड़नेको उद्यत हुए तब ब्रह्माने आकर उनको रोक दिया। उनके कहनेसे वे वहीं अन्तर्धान हो गये और रावणने अपने जयकी घोषणा की। वरुणको जीतनेकी कथा सर्ग २३ में है। वरुणकी सेना और पुत्रोंपर जय पायी। वरुण उस समय ब्रह्मलोकमें थे। मन्त्रीने हार मान ली। रहे लोकपाल इन्द्र। इन्हें तो मेघनाद बाँध ही लाया था। सूर्य, चन्द्र आदिपर विजय प्रक्षिप्त सर्गोंमें है।

'ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती...... ॥'

यहाँ यह शंका होती है कि अवधेश, मिथिलेश, बालि, सहस्रार्जुन, बलि इत्यादि अनेक लोग ऐसे थे जो रावणके वशमें न थे, फिर *'दसमुख बसबर्ती'* कैसे कहा?

कथनका तात्पर्य यह जान पड़ता है कि ब्रह्माजी जो सृष्टिके रचयिता हैं और शिवजी जो सृष्टिमात्रके

* मंडलीकपति (का०)

संहार करनेवाले हैं जब वे ही रावणके वशमें हो गये, उससे भयभीत रहते और नित्य उसके यहाँ हाजिरी देते हैं तो फिर और कौन रह गया जिसको कहें कि वशमें नहीं है। राजाके वश होनेसे उसकी सब राजधानी वशमें कही जाती है। इसी प्रकार सृष्टिके उत्पन्न और संहार करनेवालोंके वशीभूत हो जानेसे सृष्टिमात्रका वशीभूत होना कहा जाना अयोग्य नहीं। कवित्तरामायणमें ग्रन्थकारने कहा है—*'बेद पढ़ैं बिधि संभु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि ते सिर नावैं॥'* (क० ७। २) *'कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥'* (५। २) पुनः, *'बसबर्ती'* का भाव यह भी हो सकता है कि विश्वभरमें कोई रावणको वशमें या उसका वध करनेमें समर्थ न था। भानुप्रताप रावण जिसके लिये परब्रह्मका आविर्भाव हुआ वह वस्तुतः किसीसे न हारा था। और कल्पोंमें रावण कहीं-कहीं हार भी गया था। यदि कहें कि अङ्गद-रावण-संवादमें तो उसका पराजय लक्षित होता है तो उसका उत्तर यह होगा कि जैसे इस ग्रन्थमें चार कल्पके अवतारोंकी कथा मिश्रित है वैसे ही अङ्गदके संदिग्ध वचनोंमें अन्य कल्पोंके रावणकी कथा भी जानिये।

त्रिपाठीजी भी लिखते हैं कि 'सार्वभौम राजाका भी किसी अवसरमें पराजय हो जाता है, परन्तु यदि उसके शासनमें उस पराजयसे त्रुटि न आयी हो, तो उस पराजयकी कोई गणना नहीं है। दो-तीन स्थलोंपर रावणका बलिसे पराजय सुना गया है पर रावणमें एक विशेषता थी, उसमें केवल शारीरिक बल ही न था किन्तु तपबल, योगबल, अस्त्रबल, शस्त्रबल, सैन्यबल, दुर्गबल, इष्टबल आदि अनेक बल थे, जिनका समुच्चय और कहीं पाया नहीं जाता। सहस्रार्जुनका वध परशुरामद्वारा हो ही चुका था। बालिसे मैत्री हो चुकी थी। अतः यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि रावणने विश्वको वश्य कर लिया, परन्तु यह शंका-समाधान उन रावणोंके लिये है जो जय-विजय, जलंधर या रुद्रगणके अवतार थे।'

फिर भी यहाँ यह शंका उठती है कि 'आगे चलकर ग्रन्थकारने इसे *'मण्डलीकमनि'* कहा है और कहा है कि *'राखेसि कोउ न स्वतंत्र'* तो दशरथमहाराजादिके विषयमें यह बात कैसे ठीक हो सकती है?' इसके समाधानके लिये कुछ बातोंपर विचार कर लेना जरूरी है। वह यह कि रावणने लगभग ७२ चतुर्युगतक राज्य किया और दूसरे यह कि राजनीतिमें शत्रुके वशीभूत करनेके चार उपाय—साम, दाम, भय, भेद कहे गये हैं। तीसरे यह कि दिग्विजय वर पानेके तुरंत पीछेका है जब लङ्का राजधानी हो चुकी थी। ७२ चतुर्युगीके भीतर रघुकुलमें कई राजा हो गये। राजा रघुसे रावण लड़ने गया था। ब्रह्माजीने दोनोंमें मेल करा दिया। फिर राजा अनरण्यको उनकी वृद्धावस्थाके समय रावणने मार डाला। रघुकुलके राजा चक्रवर्ती होते आये हैं, जब उनको एक बार जीत लिया वा उनसे मेल कर लिया गया तो 'वशवर्त्ती' कहना अयोग्य न होगा। राजा दशरथने न कभी उसका मुकाबिला किया और न इनसे उसे युद्ध करनेकी आवश्यकता हुई।

पुनः यह भी हो सकता है कि राक्षसोंका वैर तो देवताओं और ऋषियोंसे सनातनसे चला आता है। वे मनुष्योंको बिलकुल तुच्छ चींटी-सरीखा समझते हैं, इनसे लड़नेमें भी अपना अपमान ही समझते हैं, यही कारण है कि उसने वर माँगते समय जान-बूझकर मनुजको छोड़ दिया था, यथा—**'अवज्ञाताः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः। एवं पितामहात्तस्माद्वरदानेन गर्वितः।'** (वाल्मी० १। १६। ६) इसीलिये नरेशोंपर हाथ क्या चलाता, जबतक कोई सामना न करता? देवता और उनके पक्षपाती सभी इससे भयभीत रहते थे, नरसे देवता और ऋषि बली हैं ही।

यह भी स्मरण रखनेयोग्य है कि अनरण्य महाराजके मारे जानेपर उसको देवर्षि नारदका दर्शन हुआ। देवर्षिने उससे कहा कि तू बेचारे मनुष्योंको क्यों मारता है, ये तो स्वयं ही मृत्युके पंजेमें पड़े हुए हैं। ये तो सैकड़ों व्याधियोंसे स्वयं ग्रस्त रहते हैं। ऐसोंको मारनेसे क्या? मोहमें फँसे स्वयं नष्ट होनेवाले मर्त्यलोकको दुःखी कर तू क्या पायेगा! तू निस्संशय इस लोकको जीत चुका। यथा—**'तत्किमेवं परिक्लिश्य लोकं मोहनिराकृतम्। जित एव त्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः॥'** (वाल्मी० ७। २०। १५) यहाँके प्राणी यमपुरीको जायँगे, अतः तू यमपुरीपर चढ़ाई कर। उसको जीत लेनेपर तू निस्सन्देह अपनेको सबपर विजयी समझ।

यथा—'**तस्मिञ्जिते जितं सर्वं भवत्येव न संशयः।**' (वाल्मी० ७। २०। १७) यह बात मानकर वह यमपुरीको गया और उसने वहाँ विजय प्राप्त की।

महाराज अनरण्यने मरते समय उसे शाप दिया था कि तूने इक्ष्वाकुकुलका अपमान किया है, अतः इसी कुलमें दाशरथि राम उत्पन्न होंगे जो तेरा वध करेंगे। यथा—'**उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम्। रामो दाशरथिर्नाम यस्ते प्राणान् हरिष्यति॥**' (वाल्मी० ७। १९। ३१) पुनः साहित्यज्ञ ऐसा कहेंगे कि कवियोंकी यह प्रथा है कि जब किसीकी प्रशंसा करनी होती है तो उसको हदतक पहुँचा देते हैं, उस समय उसका अपकर्ष नहीं कहते। इसीसे यहाँ उसकी जीत-ही-जीत कही, कहीं भी उसकी पराजय नहीं कहा। हाँ, जब उसका प्रताप अस्त होनेपर आयेगा तब मंदोदरी, हनुमान्‌जी और अंगदसे बातचीत होनेके समय इनके द्वारा दो-चार जगह जो उसका पराजय हुआ था उसका संकेत कवि कर देंगे। पुनः, यदि रावणका पराजय कहते तो उससे श्रीरामचन्द्रजीकी भी उसके मारनेमें विशेष प्रशंसा और कीर्तिकी बात न होती।

बाबा हरिदासजी शीलावृत्तमें लिखते हैं कि—'*तनुधारी*' कहकर जनाया कि सृष्टि दो प्रकारकी है। एक तनधारी। दूसरी बेतनधारी। बुद्धि, चित्त, मन, इन्द्रिय, स्वभाव, गुण इत्यादि—बेतनधारी (बिना तनवाली) सृष्टि बहुत है सो इस सृष्टिमें एक भी वश न हुआ। एक तनधारी सृष्टि ही वशमें हुई। सब तनधारी जीव दशमुखके आज्ञानुवर्ती हुए, इसका भाव यह है कि तनधारी जीवोंकी कोई जाति न बची, सहस्रबाहु आदि व्यक्तिगत भले ही बच गये, पर जाति न बची।

वि० त्रि० का मत है कि तनधारीका वशमें होना कहकर जनाया कि जो तनधारी नहीं था अर्थात् अनंग (कामदेव) वह उसके वशमें न था वरंच वह ही कामदेवके वशमें था।

टिप्पणी—२ (क) '*देव जच्छ गंधर्व नर किन्नर नाग कुमारि*', इति। यहाँ '*कुमारि*' शब्द देकर जनाया कि बिन ब्याही कन्याओंको जीतकर लाया, विवाहिताओंको नहीं और उत्तरार्द्धमें '*बहु सुंदर बर नारि*' पद जो दिया है वह शब्द उन्हीं कुमारी कन्याओंके लिये ही आया है। जबतक विवाह न हुआ था, केवल जीतकर लाना कहा था, तब '*कुमारि*' दिया, उन्हींके साथ विवाह होनेपर उनको '*सुंदर बर नारि*' कहा। (ख) देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नरसे स्वर्गकी, नरसे भूलोककी और नागसे पाताल-लोककी, इस तरह तीनों लोकोंकी कुमारियोंको जीतकर ब्याहना कहा।

नोट—२ '*कुमारि*' शब्द अल्पावस्थाकी कन्याओंके लिये प्रायः प्रयुक्त होता है। विशेषकर यहाँ इसी भावमें है। बूढ़ी, अनब्याही स्त्रियाँ अभिप्रेत नहीं हैं। किसीने ऐसा भी कहा है कि श्रीसीताजीको छोड़ उसने विवाहिता स्त्रियोंका अपहरण नहीं किया। परंतु इसका निषेध स्वयं रावणके उस वाक्यसे होता है जो उसने श्रीसीताजीसे कहा था। यथा—'**स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः। गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा॥**'(वाल्मी० ५। २०। ५) अर्थात् परस्त्रीके साथ सम्भोग करना अथवा उनका बरजोरी अपहरण करना निस्संदेह हम राक्षसोंका सदाका धर्म है। हाँ, बिना उनकी मर्जीके वह उनके साथ रमण नहीं कर सकता था। क्योंकि पुंजिकस्थली अप्सराके साथ बलात्कार करनेसे ब्रह्माजीने उसको शाप दिया था कि यदि अब किसी स्त्रीके साथ ऐसा करेगा तो तेरे सिरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे। यथा—'**अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि। तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः॥**'(वाल्मी० ६। १३। १४)

नोट—३ यहाँ मण्डलीकमनिका भाव सार्वभौम (सब स्वर्ग, भू और पातालमण्डलका) सम्राट् ही सङ्गत जान पड़ता है; नहीं तो पूर्वापर विरोध होगा। क्योंकि पूर्व कहा है कि '*ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनु धारी।*……' यदि मण्डलीकका अर्थ केवल १२ राजाओंका अधिपति लें तो '*मण्डलीकमनि*' का अर्थ होगा 'मण्डलीक राजाओंमें शिरोमणि'।

नोट—४ '*राज करै निज मंत्र*' इति। अर्थात धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्रकी आज्ञाको त्यागकर अपना मन्त्र चलाता है, स्वेच्छानुसार राज करता है। (खर्रा) पुनः भाव कि राजाको मन्त्री चाहिये, इसलिये उसने मन्त्री रख लिये थे, नहीं तो उसने कभी भी मन्त्रियोंकी सम्मतिकी परवाह न की। (वि० त्रि०)

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥ १॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥ २॥
देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥ ३॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥ ४॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥ ५॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥ ६॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु* मान न कोई॥ ७॥
नहिं हरिभगति जज्ञ तप ग्याना। सपनेहु सुनिय न बेद पुराना॥ ८॥

छंद—जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना॥†

सो०—बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥ १८३॥

शब्दार्थ—चरित=आचरण। परिताप=दुःख। घालै खीसा=नष्टकर डालता है, यथा—*'केहि के बल घालेहि बन खीसा।'* (५। २१) *'बातन मनहिं रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस॥'* (५। ५६) *'सो भुजबल राखेहु उर घाली।'* (६। २९)

अर्थ—(रावणने) इन्द्रजीतसे जो कुछ कहा था वह सब (उसने) मानो पहलेहीसे कर रखा था॥ १॥ जिन्हें (रावणने) सबसे प्रथम आज्ञा दी थी उनका चरित सुनो जो (उन्होंने) किया॥ २॥ देवताओंको दुःख देनेवाले निशिचरसमूह सब देखनेमें भयावन और पापी थे॥ ३॥ असुरसमूह उपद्रव करते थे। मायासे अनेक रूप धारण करते थे॥ ४॥ जिस प्रकार धर्म निर्मूल हो वही सब वेदविरुद्ध (उपाय) करते थे॥ ५॥ जिस-जिस देशमें गऊ और ब्राह्मणोंको पाते थे उस-उस नगर ग्राम और पुरमें आग लगा देते थे॥ ६॥ शुभ आचरण (ब्रह्मभोज, श्राद्ध, यज्ञ, दान, गुरु-संतसेवा इत्यादि) कहीं भी नहीं होते, देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुको कोई नहीं मानता॥ ७॥ स्वप्नमें भी हरिभक्ति, यज्ञ, तप, दान नहीं होते और न वेदपुराण ही सुननेमें आते थे॥ ८॥ जप, योग, वैराग्य, तप, यज्ञमें देवताओंका भाग जैसे ही रावण कानोंसे सुनता (वैसे ही वह) आप ही उठ दौड़ता, कुछ एवं कोई भी रहने न पाता, धर-पकड़कर सबको विध्वंस कर डालता। संसारमें ऐसा भ्रष्टाचार हो गया कि धर्म तो कानोंसे सुननेमें भी नहीं आता। जो कोई वेद-पुराण कहता उसको बहुत तरहसे भय देता और देशसे निकाल देता था। घोर निशाचर जो घोर अन्याय करते हैं उसका वर्णन नहीं हो सकता। जिनका हिंसापर प्रेम है उनके पापोंकी कौन हद॥ १८३॥

टिप्पणी—१ *'इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ।'* इति। (क) इन्द्रजीत नाम यहाँ देकर जनाया कि इसने इन्द्रको जीत लिया। *'जनु पहिलेहि करि रहेऊ'* का भाव कि इन्द्रादि समरधीर बलवान् देवताओंको जीतनेमें उसे विलम्ब न लगा; उसने सबको बात-की-बातमें जीत लिया। (ख) *'जो कछु कहेऊ'* अर्थात् *'जे सुर समरधीर बलवाना। जिन्हकें लरिबे कर अभिमाना॥ तिन्हहिं जीति रन आनेसु बाँधी।'* यह जो कहा था वैसा ही उसने किया। इन्द्रको बाँध लाया था, यह वाल्मीकीयमें स्पष्ट है। ☞यहाँ कहते हैं कि *'इंद्रजीत*

* १६६१ में है। † यह चौपाइयाँ छन्द हैं। इसके चारों चरणोंमें ३०, ३० मात्राएँ होती हैं, १०वीं, १८वीं और ३०वीं मात्राओंपर विराम होता है।

सन जो कछु कहेऊ', परन्तु कहा था वस्तुतः 'मेघनाद' से, यथा—***'मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख बल बयरु बढ़ावा॥'*** इत्यादि, जब जीत हुई तब वह ***'इन्द्रजीत'*** कहाया। इस कथनका समाधान दूसरे चरणसे किया है कि वह इन्द्रको इतना शीघ्र (आनन-फानन) जीत लाया मानो पहलेहीसे जीतकर बाँध रखा था, अब रावणके वचन सुनते लाकर दिखा दिया। [(ग)—कारण (युद्ध) न वर्णन करके कार्य प्रकट करना कि इन्द्रको मानो पहलेहीसे जीत रखा था 'अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार' है। पर यह उत्प्रेक्षाके अङ्गसे आया है। युद्ध होकर हार-जीत होती है किन्तु इस प्रकारकी उत्प्रेक्षा करना कि मानो युद्धके पहले ही जीत लिया हो 'अनुक्त विषयावस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है। दोनोंमें अङ्गाङ्गी भाव है। (वीर)]

टिप्पणी—२ (क) ***'प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा·····'*** इति। दो चरणोंमें इन्द्रजीतका विजय कहा। अब सेनाका उपद्रव यहाँसे वर्णन करते हैं। ☞ जिस क्रमसे बल वर्णन किया था उसी क्रमसे उपद्रव वर्णन करते हैं। (ख) ***'निसिचर निकर देव परितापी'*** इति। रावणने कहा था कि ***'हमरे बैरी बिबुध बरूथा'*** हैं इसीसे देवताओंको अधिक परिताप देते हैं।* [***'देखत भीमरूप'*** से रूप भयानक, ***'पापी देवपरितापी'*** से हृदय भयानक और ***'करहिं उपद्रव'*** से करनी भयानक कही। देवताओंकी मरणविधिमें यत्नशील हैं, अतः देवपरितापी कहा। (वि० त्रि०)]। (ग) ***'करहिं उपद्रव असुर निकाया।'*** असुर-समूह उपद्रव करते हैं क्योंकि रावणकी आज्ञा सबको ऐसी ही है, यथा—***'सुनहु सकल रजनीचर जूथा।'*** अतः सभी ऐसा करते हैं। उपद्रव करते हैं अर्थात् 'द्विजभोजन, मख, होम, श्राद्ध' सभीमें बाधा डालते हैं, यथा—***'सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा।'*** [(घ)—***'करहिं उपद्रव'*** कहकर ***'नानारूप धरहिं करि माया'*** कहनेका भाव कि आसुरी सेना बड़ी भारी उतर आयी थी, पर उसने एक ओरसे सबके संहारमें हाथ नहीं लगाया। वे सब सम्पूर्ण देशमें फैल गये। कामरूप तो थे ही, उन सबोंने अनेक रूप धारण किये। कोई पण्डितजी बन गये, कोई महात्माजी बन गये, कोई गोसाईंजी बन गये, सुधारक बने, कोई जनताके अगुआ बन गये, कोई देश-हितैषी बने तो कोई समाज-हितैषी बने। अपने रूपमें कोई न रहे, सब साधुरूपमें हो गये और उपद्रव आरम्भ किया। (वि० त्रि०)]

टिप्पणी ३ (क) ***'जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला।·····बेद प्रतिकूला'*** इति। वेदके प्रतिकूल करना यह धर्मका निर्मूल करना है, क्योंकि वेदके अनुकूल करना धर्म है और प्रतिकूल करना अधर्म है। वेदके प्रतिकूल कर्मोंका वर्णन आगे करते हैं—***'जेहि जेहि देस·····'।*** (ख) ***'जेहि जेहि देस······'*** कहकर जनाया कि गौ और ब्राह्मण सब देशोंमें नहीं हैं, बहुत कम हैं। [अथवा, डरके मारे सब छिपे रहते हैं वा भाग जाते हैं। ***'धेनु द्विज पावहिं'***—गौ-ब्राह्मणको पाना कहा और किसीका नाम नहीं लेते। क्योंकि ब्राह्मण ही होम, यज्ञ आदि करते और कराते हैं और धेनुसे यज्ञादिकी सामग्री प्राप्त होती है। यज्ञादिसे देव प्रबल होते हैं जो निशाचरोंके शत्रु हैं, अतः इन दोनोंका नाश करते हैं। ***'नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं'***—नगरसे छोटा ग्राम और ग्रामसे छोटा पुरवा होता है; उसी क्रमसे कहा। ***'पुर'*** से पुरवा समझना चाहिये। पुरवेमें कम होते हैं, उससे अधिक ग्राममें और इससे अधिक नगरमें। ये एकपर भी दया नहीं करते। ***'धेनु द्विज'*** से यह भी जनाया कि एक भी गौ या एक भी ब्राह्मण हुआ तो सारे नगर आदिमें आग लगा देते हैं। भाव यह कि तुम लोगोंने इनको नगरसे निकाल क्यों न दिया, उसका फल तुमको भी वही देते हैं। वैरीका मित्र भी वैरी होता है।] (च)—***'आगि लगावहिं'*** कहकर जनाया कि सब बड़े आततायी हैं। [आग लगाना प्रथम आततायित्व है। यथा—'**अग्निदो गरदश्चैव धनहारी च सुप्तघः। क्षेत्रदारापहारी च षडेते ह्याततायिनः॥**' (पद्मपु० सृष्टि० ४८। ५८)] (छ) ***'सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई'*** इति। इससे जनाया कि वे आप तो अधर्म करते ही हैं और दूसरोंके लिये भी हुक्म निकाल दिया है कि कोई भी धर्म न करे। इसीसे शुभ आचरण कहीं नहीं होते। यदि कोई धर्म करे, सुर, विप्र और गुरुको माने तो मार डाला जाय; इसीसे कोई इनको मानता भी नहीं। [देव, विप्र, गुरुकी

* जिनका आचरण तमोगुणी हो वे ही निशिचर हैं। निश+चर=तमोगुणचर। (लमगोड़ाजी)

पूजा बंद हो गयी। सभ्य वही माना जाता था, जो भक्ति, यज्ञ, तप आदिको अन्धविश्वास माने। अतः कर्म, उपासना, ज्ञान तीनोंका लोप हो गया। (वि० त्रि०)]

नोट—१ वेद ही धर्मका मूल है, उसके उखाड़नेकी विधि वे जानते थे। पण्डितजी बनकर वे वेदका व्याख्यान करते थे, बतलाते थे कि वेद मनुष्योंका बनाया हुआ है, अब देश-काल वैसा नहीं रह गया, नये वेदकी आवश्यकता है। वेदको खींच-खाँचकर मरोड़कर उसका अर्थ ही दूसरा करते थे। अर्थ करनेकी पद्धति ही बदल देते थे। कोई महात्माजी बनकर अपने माहात्म्यसे लोगोंको प्रभावित करके वेदमार्गसे च्युत करते थे, कोई गोसाईं बने हुए शिष्योंको अधर्म-रास्तेपर लगाते थे। कोई अगुआ बनकर जनताको हरा बाग दिखाते हुए उसे विपत्ति-सागरमें डुबाते थे। कोई सुधारक बनकर सम्प्रदाय और परम्पराके मिटा देनेमें ही कल्याणका मार्ग दिखाते थे। कोई देशहितैषी बनकर देश-के-देशको ईश्वरसे विमुख करनेमें लगे थे। कोई समाजहितैषी बनकर एक जातिका दूसरेसे वैर कराते थे। सभी धर्मोंके प्रतिकूल आचरण स्वयं करते और लोगोंसे कराते थे। जब जनता अधिक काबूमें हो गयी तब स्पष्ट अत्याचार करने लगे। यज्ञमें प्रधान साधन हैं—गौ और ब्राह्मण। उन दोनोंसे संसारका अकल्याण पहिले ही बतलाते थे,अब यह नियम कर दिया कि जिस पुर आदिमें ये पाये जावें उसे एकदम फूँक दो।

टिप्पणी—४ (क) *'जप जोग बिरागा·····'* इति। यह काम परम आवश्यक है। ऋषि, मुनि इत्यादि अवश्य जप, यज्ञ आदि करते हैं। इसके लिये वह किसीपर विश्वास नहीं करता। इसीसे यज्ञकी खबर पाते ही स्वयं ही उठकर दौड़ा जाता है। (*'उठि धावै'* से जनाया कि इसमें किञ्चित् भी आलस्य या विलम्ब नहीं सह सकता।) (ख) *'अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा·····'* इति। ☞प्रथम कह आये हैं कि ***'जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥'***, अब बताते हैं कि उन्होंने धर्मको ऐसा निर्मूल कर दिया कि प्रत्यक्ष दिखायी देनेकी कौन कहे कहीं कानोंसे सुननेमें भी नहीं आता। धर्मका नाश यहाँ कहकर आगे धर्मके मूलका नाश कहते हैं। (ग) ***'तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना'*** इति। वेद-पुराण धर्मका मूल हैं। वेद-पुराण सुननेसे धर्मका बोध होता है, अतः धर्म निर्मूल करनेकी यह भी एक विधि है कि वक्ता कोई रह ही न जाय। ☞प्रथम श्रोताओंका हाल कहा कि ***'सपनेहु सुनिय न बेद पुराना'*** अब वक्ताओंका हाल लिखते हैं। (घ) ***'बहु बिधि त्रासै'*** से जनाया कि निशाचर मारते-डरवाते तो श्रोताओंको भी हैं, पर वक्ताओंको धर्मके उपदेष्टा समझकर बहुत प्रकारसे त्रास देते हैं। (ङ) ***'बरनि न जाइ अनीति·····।'*** यहाँ निशाचरोंके उपद्रवकी इति लगायी। आगे राक्षसोंके अनुयायियोंका उपद्रव वर्णन करते हैं—***'बाढ़े खल बहु चोर जुआरा'*** इत्यादि। [***'हिंसा पर अति प्रीति'*** कहकर एक हिंसाकर्ममें सभी छोटे-बड़े पापोंका वर्णन 'द्वितीय पर्याय अलङ्कार' है।—(वीरकवि)]

वि० त्रि०—***'जप जोग·····'*** इति। जप आदिके सम्बन्धमें कहते हैं कि इमली-इमली कहनेसे मुँह मीठा नहीं होता, मिरचा-मिरचा कहनेसे तीता नहीं होता, अतः जप करना व्यर्थ समय व्यतीत करना समझा गया। गाँजेकी दम लगाकर बेहोश होना और समाधि लगाना एक बात समझी गयी। तप करके आँतोंको सुखाना अपनेको दुर्बल बनाना माना गया। विरागकी गिनती नालायकीमें हुई। यज्ञ खाद्यान्नदाहसे सम्पन्न होता है, अतः अपराध माना गया। महाराज रावणकी आज्ञा है कि ये सब दुष्कर्म हैं। अतः जप, योग, यज्ञ सब बन्द हो गये। केवल उड़ती खबर यदि रावणको लग जाय कि कहीं यज्ञादि होते हैं तो स्वयं दौड़ पड़ता कि कहीं जाते-जाते पूर्णाहुति न हो जाय या जिसको इस कामपर भेजा है वह आलस्य न कर जाय। स्वयं ऐसा सावधान रहता था जिससे सब सावधानीसे काम करें। अतः कवि कहते हैं कि घोर निशाचर जो करते हैं उस अनीतिका वर्णन नहीं हो सकता।

☞इस वर्णनमें उपदेशका भाव है। वह यह कि देखिये, यहाँतक धर्मका पतन होता है। अतः धर्मात्मा धर्मका ह्रास देखकर अधीर न हों। धर्मका नाश हो नहीं सकता, उसके सँभालनेके लिये भगवान्‌को आना पड़ता है।

श्रीलमगोड़ाजी—१-आपने देखा कि बालकाण्डमें यहाँतक किस कुशलतासे कविने आध्यात्मिक और आधिदैविक रहस्य बड़ी ही रसमय भाषामें लिख दिये हैं।

२-जिस सामाजिक परिस्थितिमें भगवान्‌का अवतार हुआ है उसका वर्णन कला तथा नैतिक दोनों दृष्टिकोणसे विचारणीय है।

३-जबसे मैंने डाक्टर हरदयालजीका लेख 'प्रभा' में पढ़ा था कि प्राचीन हिन्दीसाहित्यमें रामचरितमानस एक अच्छा राष्ट्रीय काव्य है, क्योंकि इसमें राष्ट्रसंघटनके मूल नियम मौजूद हैं, तबसे बहुधा इस दृष्टिकोणसे विचार किया है और रामायणपर अनेक दृष्टिकोणोंसे विचार-सम्बन्धी (माधुरीमें प्रकाशित अपने) लेखोंमें कुछ विचार प्रकट भी किये हैं। मैं राजनैतिक विशेषज्ञ नहीं हूँ। इसलिये अधिक लिखनेका साहस नहीं करता। हाँ, राजनीतिज्ञोंसे अनुरोध अवश्य करूँगा कि वे 'रामराज्य' के नियमोंपर विचार करें। और इस दृष्टिकोणसे *'रावन रथी बिरथ रघुबीरा'* वाला रथके रूपकका प्रसंग बड़े महत्त्वका है। हाँ, एक बात याद रखना चाहिये कि मानस एक काव्य है; इस कारण उसमें पारिभाषिक राजनीति नहीं है परंतु उसके संकेत बराबर हैं।

देखिये, हमने भानुप्रतापका सार्वभौम राज्य देखा। अब रावणका *'मंडलीकमनि रावन राज करै निज मंत्र'* वाला साम्राज्य देख रहे हैं और *'रामराज्य'* की कथा तो पढ़ेंगे ही। तीनों राष्ट्रोंकी तुलना बड़ी शिक्षाप्रद है। संक्षिप्ततः यह कहना अनुचित नहीं है कि भानुप्रतापके साम्राज्यमें राजस प्रधान है। धर्मका बाहरी रूप (यज्ञ-दान इत्यादि भी हैं) पर शासनकी इच्छा, वासना—रूपमें है। सारी दुनिया मेरी हो। मुझपर कोई विजय न पावे। राज बलसे फैले, इत्यादि। रावणका साम्राज्य तो तामसिक स्पष्ट ही है। इसीलिये दोनोंका परिणाम बिनाश और दुःख है। रामराज्यकी पताका ही *'सत्य सील दृढ़'* है, इससे वह सात्त्विक है। उसका रथ *'बल बिबेक दम परहित घोड़े'* से आगे बढ़ता है। परन्तु यह घोड़े, 'क्षमा, दया और समता' के रज्जुसे जोड़े गये हैं।

सत्याग्रही भाई विचार करें कि अभी 'शील' की कमी उनमें है। Non-violence (केवल नकारात्मक) है। साम्यवादी विचार करें कि Liberty (स्वतन्त्रता) की धुनमें उनकी 'समता' खूनमें सनी ही रही है। 'क्षमा, दया' से मिली नहीं है; इसीलिये Liberty (स्वतन्त्रता) और Equality (साम्य) के साथ बेचारा Fraternity (भ्रातृभाव) यों ही रह गया, या अगर काम आया तो बहुत कम।

यह भी विचारणीय है कि अयोध्यामें *'जो पाँचहि मत लागै नीका'* वाला तत्त्व प्रधान है वहाँ *'राज करै निज मंत्र'* की डिक्टेटरी (Dictatorship) का पता नहीं।

बाढ़े खल बहु चोर जुवारा। जे लंपट परधन परदारा॥ १॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥ २॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब* प्रानी॥ ३॥
अतिसै देखि धर्म कै ग्लानी†। परम सभीत धरा अकुलानी॥ ४॥
गिरि सरि सिंधु भार नहि मोही। जस मोहि गरुअ‡ एक परद्रोही॥ ५॥
सकल धर्म देखै बिपरीता। कहि न सकै रावन भय भीता॥ ६॥
धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥ ७॥
निज संताप सुनायेसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥ ८॥

* सम—१७२१, छ०, को० रा०, प्र०। सब—१६६१, १७०४, १७६२। †हानी—१७२१, १७६२, को० रा०। ग्लानी—१६६१, १७०४, छ०। ‡गरव—१६६१। गरुअ—प्रायः औरोंमें।

छंद—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गो तनु धारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥
सो०—धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति॥ १८४॥

शब्दार्थ—**जुवारा**=जुआड़ी, जुआ खेलनेवाले। **लंपट**=कामुक। **दारा**=स्त्री। **ग्लानी**=खेद, दु:ख, शारीरिक वा मानसिक शिथिलता। अरुचि, खिन्नता। **धरा**=पृथ्वी। **झारी**=समस्त, सब। **पीर**=पीड़ा, दर्द, दु:ख।

अर्थ—बहुत दुष्ट, चोर और जुआरी बढ़े जो पराये धन और स्त्रियोंमें लपटे रहते हैं (अर्थात् उनको ताकते हैं, हरते हैं, उनकी घातमें रहते हैं)॥ १॥ माता-पिता-देवता किसीको नहीं मानते। साधुओंसे सेवा कराते हैं॥ २॥ हे भवानी जिनके ऐसे आचरण हैं उन सब प्राणियोंको निशाचर जानना॥ ३॥ धर्मकी अत्यन्त गिरी हुई दशा देखकर पृथ्वी बहुत भयभीत और व्याकुल हो गयी॥ ४॥ (वह मनमें सोचने लगी कि) मुझे पर्वत, नदी और समुद्रका बोझ (वैसा भारी) नहीं लगता जैसा एक परद्रोही भारी लगता है॥ ५॥ वह सब धर्म उलटे देख रही है (पर) रावणके डरसे डरी हुई कुछ कह नहीं सकती॥ ६॥ मनमें सोच-विचारकर वह गायका रूप धारण करके, वहाँ गयी जहाँ सब-के-सब देवता और मुनि थे॥ ७॥ (उसने) अपना सब दुखड़ा रो सुनाया, (पर) किसीसे कुछ काम न चला॥ ८॥ सुर-मुनि-गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्माके लोकको गये। भय-शोकसे परम व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गऊरूप धरे साथ थी। ब्रह्माजी सब जान गये। उन्होंने मनमें विचार किया कि मेरा कुछ वश नहीं है। जिसकी तू दासी है वह अविनाशी (है वही) हमारा और तुम्हारा सहायक है। (फिर) ब्रह्माजी बोले—'हे पृथ्वि!' मनमें धैर्य धारण कर। भगवान्‌के चरणोंका स्मरण कर। प्रभु अपने दासोंकी पीरको जानते हैं। वे इस कठिन विपत्तिका नाश करेंगे॥ १८४॥

टिप्पणी—१ [(क) *'बाढ़े'* से जनाया कि पूर्व भी थे, पर कुछ ही थे। अब निशाचर-शासनके कारण संख्या बहुत बढ़ गयी। पुन: बाढ़े अर्थात् इनकी दिनोंदिन उन्नति देख पड़ने लगी।] (ख) (चोरी और जूआका साथ है। चोर ही पक्के जुआड़ी होते हैं, दूसरेके धनसे उन्हें जूआ खेलना ठहरा। अत: दोनोंको साथ कहा। (वि० त्रि०) *'मानहिं मातु पिता नहिं देवा'* से कृतघ्न और नास्तिक जनाया। *'साधुन्ह सन करवावहिं सेवा'* से अधर्मी सूचित किया; क्योंकि साधुकी सेवा करना धर्म है सो न करके उलटे उनसे सेवा कराते हैं। [(ग) *'ते जानहु निसिचर सब प्रानी'* इति। ☞यहाँ निशाचरका अर्थ बताया है। बड़े-बड़े दाँत-सींग भयावनी शक्ल इत्यादिकी आवश्यकता नहीं है। उपर्युक्त आचरण जिनके हों वे सब निशिचर ही हैं। *'सम'* पाठान्तरका भाव यह होगा कि जो काम निशिचर करते हैं वही ये करते हैं, अतएव यह निशिचरके समान हैं।]

टिप्पणी—२ [(क) *'अतिसै देखि…'* का भाव कि जबतक निशाचरोंमें ही अधर्म रहा तबतक दु:ख विशेष न हुआ क्योंकि उनका तो यह स्वाभाविक गुण है, पर जब इनके कारण प्राय: संसारभरमें ऐसे ही आचरण होने लगे, सभी प्राणी निशाचरोंके आचरण करने लगे, जो कुछ धर्म करते थे वे या उनकी संतान ही अधर्ममें रत हो गयी इत्यादि, तब पृथ्वी अकुला उठी। गीतामें भी अवतारके लिये धर्मकी ग्लानिका होना आवश्यक दिखाया है, यथा—'**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्**॥' (४। ७) अत: यहाँ वही धर्मकी *'ग्लानी'* शब्द देकर सूचित किया कि अवतारके लिये जैसा अधर्मका अभ्युत्थान और धर्मकी हानि होनी चाहिये वे सब उपस्थित हो गये हैं।] (ख)

'परम सभीत धरा अकुलानी' इति। यहाँ *'धरा'* नाम देनेका भाव कि यह धर्मके बलसे सबको धारण किये हुए है; इसीसे अधर्मीका भार नहीं सह सकती। [धरा—**'धरति विश्वम् धृञ् धारणे'**, 'धरा: **पर्वता: सन्त्यस्यां वा।'** अर्थात् पर्वत है जिसपर वह *'धरा'* है, जो विश्वको धारण करती है वह धरा है। (प० प० प्र०)]

नोट—१ बाबा हरिदासजी कहते हैं कि—(क) यहाँ *'धरा'* नाम सहेतुक है। जिसको कोई सदा धरे रहे, एवं जो सब वस्तु अपनेमें धरे रहे उसे *'धरा'* कहते हैं। (यह अर्थ अशास्त्रीय है। प० प० प्र०) शेषजी धरनीको सदा अपने शीशपर धारण किये रहते हैं। अत: 'धरा' अकुलाती है कि शेषजी मुझको पापसे लदी हुई समझकर अपने सिरपर बड़ा पापका भार जानकर कहीं जलमें बहा न दें। पापी जीव सिरपर पाप लादते हैं और शेषजी हरिभक्त हैं तब भला वे पापको सिरपर कैसे रहने देंगे? (ख) *'धेनु रूपधरि हृदय बिचारी'* इति। हृदयमें यह विचारा कि जब शेषजी मुझे जलमें डाल देंगे तब मैं क्या यत्न करूँगी? सब जीव मेरे आश्रित हैं। वे सब डूब जायेंगे। देवता तो गगनवासी हैं उनको जलमें डूबनेकी कोई शंका नहीं। यह विचारकर गोरूप धरकर देवसमाजको गयी। [नोट—*'गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥'* के सम्बन्धसे वा विचारके अनुसार*'धरा'* नाम बड़ा ही उत्तम पड़ा है।]

टिप्पणी—३ *'जस मोहि गरुअ एक परद्रोही'* का भाव कि एक परद्रोहीका भार इन सबके मिलकर भी भारसे अधिक भारी है और यहाँ तो अगणित परद्रोही हैं तब उनके बोझका वर्णन या अंदाजा (अटकल) कौन कर सकता है [सच्चे बोझका निषेध करके उसका भारीपन परद्रोहीमें आरोप करना '**पर्य्यस्तापह्नुति अलङ्कार**' है। (वीरकवि)]

वि० त्रि०—*'सकल धर्म देखै बिपरीता'* इति। शास्त्र कहता है कि '**व्यवस्थितार्यमर्याद: कृतवर्णाश्रमस्थिति:। त्रय्या हि रक्षितो लोक: प्रसीदति न सीदति॥**' अर्थात् वर्णाश्रमकी स्थितिमें संसार सुखी होता है, कष्ट नहीं पाता; परंतु तामसी बुद्धिवालोंको वर्णाश्रम आँखका काँटा हो जाता है। शास्त्र कहता है '**न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति**', परन्तु तामसी बुद्धिवालोंको स्त्रीस्वातन्त्र्य सब कल्याणका मूल जँचता है। शास्त्र कहता है कि '**शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गश्च**' शौचका अभ्यास डालनेसे अपने शरीरसे घृणा हो जाती है, वह दूसरेका संसर्ग नहीं करता, पर तामसी बुद्धिवाले छुआछूत उठा देनेको ही धर्म समझते हैं। रावणने कानून लागू कर दिया है, इससे कोई कुछ कह नहीं सकता।

टिप्पणी—४ *'धेनु रूप धरि हृदय बिचारी'* इति। धेनुरूप धारण करनेका भाव कि एक तो वास्तवमें पृथ्वीका गऊरूप ही है, दूसरे गऊकी रक्षा सब करते हैं; अत: गोरूप धारण किया। [श्रीमद्भागवतमें भी राजा परीक्षित् और कलिके प्रसंगमें पृथ्वीको गौ, धर्मको बैल और कलिको कसाईरूप कहा गया है। सुकृति राजाओंके प्रसंगोंमें जहाँ-तहाँ पृथ्वीरूपी गौका दुहना कहा गया है। पुन: गऊका रूप अति दीनताका स्वरूप है, अतएव गऊ बनी।] *'गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी'* अर्थात् सुमेरु पर्वतकी खोहमें जहाँ ये सब छिपे थे, यथा—*'रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥'* (१८२। ६)।

प० प० प्र०—अन्य ग्रन्थोंमें *'गो'* रूपके उल्लेख मिलते हैं, पर *'धेनु'* शब्दका व्यापक अर्थ उसमें नहीं है। '**धेनु: स्यात् नव सूतिका**' अर्थात् नयी ब्याई हुई गौको धेनु कहते हैं। ब्याई हुई गौके वत्स (बछड़ा) रहता है। धरारूपी धेनुका बछड़ा तो धर्म है, उसे रावणने धरणीपर नहीं रहने दिया, इसीसे धरा परम सभीत होकर व्याकुल हो गयी। 'मेरे प्राणप्रिय वत्सको सुर-मुनि मुझसे मिला देंगे' इस आशासे वह *'गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।'* गोशब्दसे यह भाव नहीं निकल सकता।

नोट—२ (क) *'निज संताप सुनायेसि रोई'* इति। गौको जो दु:ख होता है तो वह मुँहसे कैसे कहे, अश्रुधारा बहाती है जिससे मालूम हो जाता है कि उसे दु:ख है। देवताओंके समीप जाकर रोने लगी; इसीसे वे कष्ट जान गये। अथवा, जैसे उसने गौका रूप धारण किया वैसे ही मुँहसे अपना

दु:ख भी कह सुनाया और रोती रही। रो-रोकर दु:ख सुनानेसे दया शीघ्र आती है। दूसरे इससे प्रकट होता है कि कष्ट अत्यन्त भारी है, असह्य है; इसीसे रोना आता है। पुनः रोनेका भाव कि आप सब ऐसे समर्थोंके रहते हुए मेरी यह गति हो यह उचित नहीं। यथा—*'सभा माँझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ। तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ॥'* (३। २१) *'सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई॥'* (ख) पुनः, रोकर जनाया कि देवता आदि तो भागकर बच भी जाते हैं, मैं तो भाग भी नहीं सकती, अतः रोती रहती हूँ। *'काहू तें कछु काज न होई'* क्योंकि ये सब तो स्वयं भयके कारण डरे छिपे रहते हैं, रावण दिन-रात इनके पीछे पड़ा रहता है, यथा—*'किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबहीके पंथहि लागा॥'* तब यह क्या सहायता कर सकते?

टिप्पणी—५ (क) *'सुर मुनि''''''''गे बिरंचि के लोका।'* भाव कि आपने ही रावणको वर दिया है जिसके बलपर रावण सब अत्याचार कर रहा है। और आपने ही हमें अधिकारी बनाया सो सब अधिकार रावणने छीन लिये, हम भागे-भागे फिरते हैं। आप ही अब हमारे बचनेका उपाय बताएँ। पुनः भाव कि आप सृष्टिके रचयिता हैं, सारी सृष्टिका नाश हो जायगा, अतः शीघ्र उपाय कीजिये। (ख)*'परम बिकल भय'''''।'* भय रावणका है। यथा—*'सकल धरम देखै बिपरीता। कहि न सकै रावन भय भीता॥'* शोक उसके अत्याचारका और धर्मके नाशका है, यथा—*'अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥'* जो पूर्व कहा था उसीको यहाँ इन दो शब्दोंसे जना दिया।

टिप्पणी—६ (क) *'ब्रह्मा सब जाना'* भाव कि देवताओंसे इसने अपना दु:ख रोकर सुनाया तब उन्होंने जाना था और ब्रह्मासे दु:ख कहना न पड़ा, वे अपनेसे जान गये। *'कछू न बसाई'* अर्थात् मेरी कुछ न चलेगी। ☞देवताओंसे कुछ काम न हुआ, यथा—*'काहू तें कछु काज न होई।'* और ब्रह्माजी भी यही अनुमान करते हैं कि मेरा कुछ बस नहीं। अर्थात् इनसे भी कुछ न हुआ। [(ख) *'जा कर तैं दासी सो अबिनासी'* —भाव कि जिनका किसी-न-किसी कालमें विनाश है उनके हाथसे रावण नहीं मरेगा। जो अविनाशी है उसीके हाथसे उसकी मृत्यु होगी। वही प्रभु हमारे और तुम्हारे सहायक हैं। (बाबा हरीदासजी)] (ग) *'हमरेउ तोर सहाई'* का भाव कि जैसी विपत्ति तुम्हें है वैसी ही हमें भी है।

प० प० प्र०—(क) जब सुर-मुनिने भी असमर्थता दिखायी तब निराशा हुई, अपने वत्ससे मिलना असम्भव समझ वह बेचारी गौके समान दीन बन गयी। अतः *'गो तनु धारी'* बनी। (ख) *'भूमि बिचारी'* इति। पहले *'धरा'* थी अब*'भूमि'* बन गयी। **'भवति इति भूमिः'** (अमर व्या० सु०)। भाव कि अब कुछ (भवति) होगा, क्योंकि वे विरञ्चि हैं, उन्होंने रावणके विरुद्ध कुछ उपाय रचा होगा ही। देखिये, जब ब्रह्माने कुछ उपाय बताया तब बिरञ्चि शब्द आया है, यथा *'कह बिरंचि हरिपद सुमिरु।'* जब कहा कि *'मोर कछू न बसाई'* तब ब्रह्मा-वृद्धिकर्ता। उन्होंने रावणको वर देकर उसके ऐश्वर्य, सत्ता आदिकी वृद्धि कर रखी है, इसीसे वे कुछ कर नहीं सकते।

नोट—३ *'मोर कछू न बसाई'* और *'हमरेउ तोर सहाई'* का भाव कि हम भी तो उससे डरते हैं। देखो, हमें नित्य उसके पास वेद सुनाने जाना पड़ता है, हमारा भी बन्धन वही प्रभु छुड़ावेंगे।

खर्रामें *'हमरेउ तोर सहाई'* का भाव यह लिखा है कि 'हमारे और तेरे सहायमें विरोध है। रावणके मरणसे तेरा सहाय है और हमने तो रावणको नरवानरसे मरनेका वर दिया है, अन्यसे न मरनेमें ही हमारी सहायता है। पर ऐसा कौन नरवानर है जो उसे मार सके, यह बात उसी अविनाशीके हाथ है वह चाहे तो सब सुगम है।'

टिप्पणी—७ (क) *'धरनि धरहि मन धीर'*—पृथ्वी भय और शोकसे परम व्याकुल है। अतः धीरज देते हैं। *'धरनि'* का भाव कि तुम विश्वको धारण करनेवाली हो, अतः धैर्य धारण करो। धैर्य धारणकर

अपना 'धरणि नाम सार्थक कर।' *'हरि पद सुमिरु'*—हरिके चरणोंका स्मरण करनेको कहा, क्योंकि भगवान्‌के स्मरणसे धैर्य बँधता और कष्ट निवृत्त होता है। कष्टमें भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये, यथा—*'कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥'* (५। १५) स्मरणमें 'हरि' पद दिया क्योंकि *'क्लेशं हरतीति हरिः'* और 'विपत्ति' भंजन करनेमें 'प्रभु' शब्दका प्रयोग किया क्योंकि दारुण विपत्तिके भंजन करनेमें वे 'प्रभु' अर्थात् समर्थ हैं, इसीसे देवताओंने रघुनाथजीसे लंकामें कहा है कि *'दारुन बिपति हमहि यह दीन्हा।'*

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिय पुकारा॥ १॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस* प्रभु सोई॥ २॥
जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती॥ ३॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ†। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥ ४॥

शब्दार्थ—**पुकारा**=फरियाद, दुहाई, रक्षा या सहायताके लिये चिल्लाहट। अपनी ओर ध्यान आकर्षित करनेके लिये जोरसे किसीका नाम लेना या कोई बात कहना। किसीसे पहुँचे हुए दुःख वा हानिका उससे निवेदन जो दण्ड या पूर्तिकी व्यवस्था करे।

अर्थ—सब देवता बैठे हुए विचार करते हैं कि प्रभुको कहाँ पावें, कहाँ जाकर पुकार करें (अपना दुःख सुनायें)॥ १॥ कोई वैकुण्ठ जानेको कहता है और कोई कहता है कि वही प्रभु क्षीरसागरमें निवास करते हैं॥ २॥ जिसके हृदयमें जैसी भक्ति और जैसा प्रेम है प्रभु (उसके लिये) वहीं सदा उसी रीतिसे प्रकट हो जाते हैं॥ ३॥ हे गिरिजे! उस समाजमें मैं भी था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'बैठे सुर सब करहिं बिचारा'* से जनाया कि देवताओंने सभा की, उनका समाज विचार करनेके लिये बैठा जैसा आगेके *'तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ'* से स्पष्ट है। (अथवा ऐसा भी सम्भव है कि सब देवता वहाँ एकत्र थे ही, अतः सभी सोच रहे हैं कि कहाँ अविनाशी प्रभुको पावें! कहाँ उनसे जाकर पुकार करें?) (ख) *'कहँ पाइअ प्रभु'* अर्थात् जो हमारी विपत्ति हरण करनेको समर्थ हैं उनको कहाँ पावें, कहाँ जाकर मिलेंगे? वे विचार करते हैं कि रावण हमसे अवध्य है, (ब्रह्माके पास गये सो उन्होंने स्वयं कहा है कि *'जाकर तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई'* तथा *'प्रभु भंजिहि दारुन बिपति।'* इससे यह स्पष्ट है कि वे भी कुछ कर नहीं सकते, तथा *'मोर कछू न बसाई',* अतएव) वे अब न तो ब्रह्मासे कहते हैं और न शिवजीसे ही कि आप रावणका वध करें, क्योंकि दोनोंहीने रावणको वर दिया है। यह बड़े लोगोंकी रीति है कि जिसे वे बनाते हैं उसे बिगाड़ते नहीं। (और यदि वे ऐसा करें तो फिर उनके वर और शापका मूल्य ही कुछ न रह जाय। और, जब वचनका मूल्य न रहा तो उन्हींका क्या मूल्य रह गया? वाल्मीकीयमें शिवजीने स्वयं कहा है कि हम वर दे चुके हैं, अतः इसको क्या मारें!) अब रहे विष्णु, यह रावणको मार सकते हैं; ये वचनबद्ध नहीं हैं; अतएव सोचते हैं कि कहाँ जाकर उनसे पुकार करें? इसीपर कोई वैकुण्ठ जानेकी सलाह देते हैं। (ग) प्रभुसे पुकार करनेका भाव कि जब-जब देवताओंको दुःख होता है तब-तब वे ही दुःख हरते हैं, यथा—*'जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥'* (६। १०९) (घ) *'पुर बैकुंठ जान कह कोई।......'* इति। भाव कि जब किसीने कहा कि प्रभुको कहाँ पावें? तब किसीने उत्तर दिया कि वैकुण्ठको चलो, वे वहाँ मिलेंगे। जो स्थान जिस देवताका जाना हुआ है वह वही स्थान बताता है। (दूसरे जो क्षीरशायी भगवान्‌का

* महँ बस सोई—(ना० प्र०)। महँ प्रभु सोई—(रा० प०)। 'रह प्रभु'। †१६६१में 'रहोऊँ' है।

अवतार लेना जानते हैं वे क्षीरसिंधु जानेको कहते हैं।) वैकुण्ठवासी और क्षीरशायी भगवान् अवतार लेते हैं। इससे उनके यहाँ जानेको कहते हैं। ☞देवताओंके वचन उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।*'कहँ पाइअ प्रभु करिय पुकारा'* इस वचनमें प्रभुकी प्राप्तिका ठिकाना नहीं है, इससे *'पुर बैकुंठ जान कह कोई'* यह वचन विशेष है, क्योंकि इसमें प्रभुकी प्राप्तिका ठिकाना है। परंतु वैकुण्ठ दूर है इससे कोई कहता है कि *'पयनिधि बस प्रभु सोई'* यह वचन विशेष है। क्षीरसमुद्र निकट है। आगे शिवजीका वचन इससे भी विशेष है क्योंकि जहाँ सब बैठे हुए हैं वहीं प्रभुकी प्राप्ति उन्होंने बतायी। ☞(तीन उपासनाएँ यहाँ दिखायीं। जो वैकुण्ठवासीके उपासक हैं, उन्होंने वैकुण्ठ जानेको और जो लक्ष्मीनारायणके उपासक हैं उन्होंने क्षीरसिंधु जानेको कहा)!

वे० भू० पं० रा० कु० दास—ब्रह्माके एक दिनको कल्प कहते हैं। और *'कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं',* इस तरह ब्रह्माके एक वर्षमें ३६० बार प्रभुका अवतार हो जाता है। अतएव ब्रह्माजीने बहुत बार श्रीरामावतार देखा है, इससे वे जानते हैं कि रामावतार वैकुण्ठ अथवा क्षीरसागरसे नहीं होता किन्तु साकेताधीश श्रीराम ही दाशरथी राम होते हैं—**'तथा रामस्य रामाख्या भुवि स्यादथ तत्त्वतः।'** (अथर्ववेद) विरजापार त्रिपाद्विभूतिमें केवल मुक्त जीव जा-आ सकते हैं—**'यत्र गच्छन्ति सूरयः।'** देवता बद्ध जीव हैं—*'भव प्रवाह संतत हम परे'* के अनुसार ये वहाँ जा नहीं सकते।

ब्रह्माजी तो इस विचारमें हैं कि क्षीरसागर-वैकुण्ठादिसे काम न चलेगा जो एकपाद्विभूतिमें हैं, अतः कैसे काम चलेगा? रहे देवता। वे अवतारकी व्यवस्था नहीं जानते, क्योंकि एक कल्पके भीतर चौदह इन्द्र हो जाते हैं। प्रत्येक इन्द्रके साथ-साथ मनु, सप्तर्षि और देवता आदि भी दूसरे-दूसरे हो जाते हैं। (विष्णु-पुराणादिमें विस्तृत वर्णन है, इस तरह एक कल्पके भीतर देवताओंके कई जन्म हो जाते होंगे।

देवता इतना जानते हैं कि वृन्दाका शाप वैकुण्ठाधीशको हुआ, जय-विजयको सनकादिकका शाप रमा-वैकुण्ठमें हुआ और नारदशाप क्षीरशायीको हुआ तथा नृसिंहावतार क्षीरसागरसे ही हुआ था, यथा—**क्षीरोदार्णवशायिनं नृकेशरिणम्।** नृ० ता०। अतः देवताओंका खयाल है कि नृसिंहवामनादिकी तरह रावणवधार्थ भी क्षीरसागर या वैकुण्ठसे ही कोई अवतार होगा इससे वहीं जाना ठीक होगा। परंतु दोमेंसे कहाँ जायँ! इस सोचमें हैं।

प० प० प्र०— वैकुण्ठाधीश विष्णु तथा क्षीरनिधिनिवासी श्रीमन्नारायणका रामावतार लेना तो अवतारहेतु-प्रकरणसे स्पष्ट है। जिस कल्पमें यह सभा बैठी है उसमें तो **'रामस्तु भगवान् स्वयम्'** (प० पु०) का ही अवतार मनु-शतरूपा वर-प्रदानके अनुसार होनेवाला है, यह शिवजी जानते हैं, इसीसे उन्होंने कहा कि वे सर्वत्र हैं, जहाँ चाहो प्रकट हो सकते हैं। साधारण अज्ञानी लोग यह नहीं जानते कि विष्णु, नारायण और राम तत्त्वतः एक हैं, अतः यहाँ दिखाया है कि रामावतार इन तीनोंमेंसे किसी एकका होता है।

बैजनाथजी लिखते हैं कि देवताओंकी उक्तिमें भाव यह भी है कि जब किसीने वैकुण्ठ जानेको कहा तब सब वैकुण्ठ गये। वहाँ भगवान्ने कहा कि इस रावणकी मृत्यु हमारे हाथ नहीं है। तब किसीने क्षीरसमुद्र जानेको कहा। वहाँ जानेपर भी वही उत्तर मिला। जब सब देवता असमंजसमें हुए तब वे शिवजीके पास आये और ये कहा कि अविनाशी प्रभु कहाँ मिलें। (यह भाव शिथिल सा जान पड़ता है।)

टिप्पणी—२ (क) *'जाके हृदय भगति जसि प्रीती'* इति। इस वाक्यके कथनका तात्पर्य यह है कि देवताओंके विचारसे न तो भगवान् प्रकट ही हुए और न आकाशवाणी ही हुई। इसीपर कहते हैं कि जिसके हृदयमें जैसी भक्ति और जैसी प्रीति है उसी रीतिसे प्रभु वहाँ सदा प्रकट होते हैं। देवताओंकी भक्ति और प्रीति वैकुण्ठवासी और क्षीरशायी विष्णुभगवान्में है इसीसे उनके पास वे जानेको कहते हैं। जब देवता वहाँ जायँ तब उनको भगवान् वहीं मिलें, यहाँ नहीं मिल सकते। *'जसि प्रीती'* का भाव कि भगवान् प्रीतिसे प्रकट होते हैं, यथा—*'अतिसय प्रीति देखि*

रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा॥' जहाँ भावना करो वहीं प्रकट होते हैं। [जैसे नारदजीने कौतुकी नगरमें ही खड़े-खड़े प्रार्थना की तो वहीं प्रकट हो गये थे। यथा—*'बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥'* *'तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ'* इससे जनाया कि उस समाजमें शिवजीका भी होना वे नहीं जानती हैं। पार्वतीजीकी यह प्रार्थना है कि *'जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयालु राखहु जनि गोई॥'* (१११। ४) इसीसे शिवजी अपना वहाँ होना उनसे कहते हैं। (ग) *'अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ।'* तात्पर्य कि सब देवता अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे थे, इससे बीचमें कहनेका अवकाश न मिला था। जब सब कहकर चुप हो रहे, कोई एक विचार निश्चित न हो पाया तब अवसर पाकर मैंने कहा]। *'अवसर पाइ'* क्योंकि अवसरपर कही हुई बात काम करती है। यथा—*'रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥'* (२। २८४) इत्यादि। अवसर यही था कि कोई मत निश्चित न कर सके, थककर बैठ गये, तब कहना योग्य था।

नोट—शंकरजी कहाँसे आ गये? उत्तर यह है कि देवता ब्रह्माजीके पास गये थे। ब्रह्माजीने सोचा कि यह बात मेरे वशकी नहीं है। अतः वे सबको साथ लेकर कैलास पर्वतपर गये। सब देवताओंने उनकी स्तुति की। शंकरजीने सबको अपने पास बुला भेजा। ब्रह्माजीने सबके आगमनका कारण बताया। तब वे भी साथ हो लिये। [(पद्मपु० पातालखण्ड) इसके आगेकी कथा मानससे भिन्न है] मानस-कल्पकी कथासे ऐसा अनुमान होता है कि कैलासपर ही सब विचार होने लगा। शंकरजी सबको लेकर कहीं गये नहीं, यह उनके *'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना'* से स्पष्ट है। विशेष दो० १८७ में देखिये।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें* प्रगट होहिं मैं जाना॥५॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥६॥
अगजगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटै जिमि आगी॥७॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥८॥

दो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मति धीर॥१८५॥

शब्दार्थ—**'दिसि बिदिसि'**—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण ये चार दिशाएँ हैं। अग्निकोण (पूरब-दक्षिणके बीचमें), नैर्ऋती (दक्षिण-पश्चिमके बीचमें), वायवी (पश्चिम-उत्तरके बीचमें) और ऐशानी (उत्तर-पूरबके बीचमें)—ये चार विदिशाएँ हैं। ऊपर, नीचे (ऊर्ध्व और अधर)—ये दो मिलाकर सब दस दिशाएँ हैं। **बिदिसि**=दो दिशाओंके बीचका कोना। **अग**=स्थावर, जड, अचर। **जग**=जंगम, चर, चेतन। **बिरागी**=राग-ममत्वरहित, उदासीन। **'साधु-साधु'**—सत्य है, सत्य है! वाह-वाह! शाबाश! ठीक है, ठीक है, तुम परम साधु हो!

अर्थ—'भगवान् सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त हैं और प्रेमसे प्रकट हो जाते हैं, यह मैं जानता हूँ॥ ५॥ कहिये तो, वह कौन देश, काल, दिशा, विदिशा है जहाँ प्रभु न हों?॥ ६॥ (प्रभु) सब चराचरमय हैं, सबसे अलग हैं और अलिप्त वा रागरहित हैं। वे प्रेमसे प्रकट हो जाते हैं, जैसे अग्नि (लकड़ी)से'॥ ७॥ मेरी बात सबके मनमें जमी अर्थात् सबोंने मान ली। मनमें हर्ष हुआ, शरीरमें रोमाञ्च हुआ और नेत्रोंसे जल (प्रेमाश्रु) बहने लगा और वे धीरबुद्धि (ब्रह्माजी) सावधानतासे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे॥ १८५॥

टिप्पणी—१ (क) *'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।'* देवताओंने भगवान्‌को एकदेशीय बताया अर्थात् उनका एक देशमें रहना बताया, यथा—*'पुर बैकुंठ जान कह……'*, *'कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई'*। इसीपर

* तैं—१६६१।

शिवजी कहते हैं कि वे सर्वत्र समान व्यापक हैं। (ख) *'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना'* इति। *'मैं जाना'* का भाव कि तीन कल्पोंकी बात देवताओंने कही। *'पुर बैकुंठ जान कह कोई'* इससे जय-विजय और जलंधरके निमित्त वैकुण्ठवासी भगवान् रामजी हुए। अत: इस वाक्यसे उन कल्पोंको कहा गया। *'कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई',* यह वाक्य क्षीरशायी भगवान्‌का बोधक है। रुद्रगणोंके लिये क्षीरशायी भगवान् रामजी हुए। चौथे कल्पकी कथा कोई नहीं जानते, जो भानुप्रताप-अरिमर्दनके लिये परात्पर ब्रह्मका अवतार है-*'ब्रह्म भएउ कोसलपुर भूपा'* इसे महादेवजी कहते हैं। *'मैं जाना'* का भाव यही है कि इस बातको शंकरजी ही जानते हैं और यह कथा भी कही हुई शंकरजीकी ही है। यथा-*'सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥'* जो देवताओंकी जानी है वही आकाशवाणी है।

नोट—१ *'सर्बत्र समाना'*—शिवजी इस गुप्त रहस्यको प्रकट न कर सकते थे, क्योंकि संतमतमें भविष्य गुप्त भेद प्रकट करनेकी रीति नहीं है, दूसरे देवताओंकी दृष्टि यहाँतक नहीं पहुँची थी, उनको प्रतीति भी न होती। अतएव उन्होंने इतना ही कहा कि प्रभु सर्वत्र हैं, जहाँ प्रेमकी विशेषता हुई वे प्रकट हो गये, जैसे लकड़ीमें अग्नि सर्वत्र एक-सी है पर जहाँ रगड़की विशेषता होती है वहींसे वह उत्पन्न हो जाती है।—(मा० त० वि०) शिवजीने लक्षणारूपसे भगवान्‌का परिचय तो दे ही दिया, केवल नाम न प्रकट किया, इस बातको केवल ब्रह्माजी समझे। (स्नेहलताजी) *'समाना'* का भाव कि यह बात नहीं है कि वैकुण्ठमें कुछ अधिक हों या क्षीरसागरमें कुछ अधिक हों और यहाँ कुछ कम हों, वे तो सर्वत्र समान हैं, पर अव्यक्तरूपसे हैं। वे प्रेमसे ही व्यक्तरूपमें आते हैं। (वि० त्रि०)

नोट—२ इस प्रसङ्गमें पृथक्-पृथक् मत दिखलाये हैं। कुछ तो यही समझते थे कि वे वैकुण्ठभगवान् ही अवतार लेते हैं और कोई यह समझता है कि श्रीमन्नारायण ही अवतार लेते हैं। अपने-अपने विश्वास और भक्तिके अनुसार उन्होंने अपनी-अपनी सम्मति दी कि वहाँ चलकर प्रभुसे प्रार्थना करें या यों कहिये कि यहाँ नाना पुराणों और रामायणोंके आचार्योंके सम्मत एकत्र कर दिये हैं। किसीने वैकुण्ठसे अवतार गाया है, जैसे जलंधर और जय-विजयके लिये और किसीने क्षीरसागरसे, जैसे हरगणोंके लिये, इसीलिये कोई वैकुण्ठ और कोई क्षीरसमुद्रकी सम्मति देता है—(मा० त० वि०)। केवल ब्रह्माजी और शिवजी जानते हैं कि वहाँसे यह अवतार न होगा। ये सबसे बड़े हैं जबतक ये भी उनसे सहमत न हों उनका प्रस्ताव चल न सकता था, पर जब देवता कोई एक बात निश्चित न कर सके तब श्रीशिवजी बोले। नोट ७ भी देखिये।

नोट—३ श्रीशिवजीने प्रथम ही क्यों न कहा? इस प्रश्नको लेकर लोग इसका उत्तर यह देते हैं कि (१)—उन्होंने सोचा कि सबकी सम्मतिसे यदि कोई विचार निश्चित हो जाय तो हमें कुछ कहना ही न पड़े। जब देखा कि सब अपनी-अपनी गा रहे हैं, समय व्यर्थ जा रहा है, तब बोले। (२)—आप जानते हैं कि यह अवतार श्रीसाकेतविहारीका होगा न कि वैकुण्ठ वा क्षीरशायीभगवान्‌का। इसलिये जब सबकी सुन चुके तब यही विचारकर कि ऐसा न हो कि ये कहीं चल दें जिसमें व्यर्थ परिश्रम हो, इन्होंने इससे अपना मत कह दिया। पुन: (३)—यदि प्रथम ही अपना मत कह देते तो आपकी बातका इतना आदर न होता, संकोचवश कोई कुछ कहता नहीं पर जीको यह मत भाता या न भाता, यह निश्चय न था।

नोट—४ बाबा जयरामदास रामायणीजी यह अर्थ करते हैं कि 'जो प्रभु श्रीवैकुण्ठधाममें रहते हैं तथा जो प्रभु क्षीरसागरमें रहते हैं वही हरि व्यापक भी हैं, जहाँ प्रेम किया जाय वहीं प्रकट हो जाते हैं।' (कल्याण ५-६-९०७)

टिप्पणी—२ (क) *'देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं।'* पूर्व जो कहा था कि हरि सर्वत्र व्यापक हैं उसीका ब्यौरा यहाँ करते हैं कि 'देश, काल' इत्यादि। (ख) *'अगजगमय सब रहित बिरागी।'* विरागी अर्थात् रागद्वेषरहित हैं। जहाँ विराग है वहाँ राग है। वह (प्रभु) रागसे अगजगमय नहीं हैं तथा

द्वेषसे सबसे रहित नहीं हैं। [अर्थात् अगजगमय होनेसे यह न समझो कि उनका इसमें राग वा प्रेम है और सब रहितसे यह न समझो कि वे सबसे द्वेष रखते हैं अतः सबसे अलग हैं; किंतु जड़चेतनमय होते हुए भी वे सर्वरहित और विरागी भी हैं। यह दो विरोधी बातें कहकर उनका ऐश्वर्य दरसाया। अथवा, जैसे कमल जलमें होते हुए भी उससे निर्लिप्त रहता है वैसे ही जगमय होते हुए भी प्रभु सर्वरहित हैं। (ग) *'प्रेम तें प्रभु प्रगटै जिमि आगी'* इति। भाव कि सेवकका काम बिना प्रकट हुए व्यापकसे नहीं चलता। इसीसे प्रकट होनेका उपाय बताते हैं। जैसे अग्नि काठके भीतर रहता है और संघर्षणसे प्रकट होता है; इसी तरह हरि सर्वत्र व्यापक हैं। प्रेमसे प्रकट होते हैं। 'प्रभु अग्निकी तरह प्रेमसे प्रकट होते हैं', इस कथनका भाव यह है कि ब्रह्मका विवेक अग्निके समान है, यथा—*'एक दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥'*

वि० त्रि०—अग्निका प्राकट्य चार प्रकारसे होता है—आवेश, प्रवेश, स्फूर्ति और आविर्भाव। इसी भाँति प्रभुका प्राकट्य भी चार प्रकारसे होता है। बर्तनके पानीमें जैसे अग्निका आवेश होता है, वैसे ही आवेशावतार कुछ दिनके लिये होता है। लोहेके गोलेमें अग्निप्रवेशकी भाँति प्रवेशावतार होता है। बिजलीकी चमककी भाँति स्फूर्ति-अवतार क्षणभरके लिये होता है और आविर्भाव तो पत्थरमें टाँकीकी चोटसे साक्षात् अग्निके प्राकट्यकी भाँति प्रभुका आविर्भाव होता है, अतः अग्निकी उपमा दी।

लमगोड़ाजी—जैसा पहले विस्तारसे एक नोटमें लिखा जा चुका है कि तुलसीदासजीका अवतारवाद बड़े ही तर्कपूर्ण (rationaliot) रूपमें है। इसीलिये उन्होंने उपमा भी वैज्ञानिक ही दी है कि जैसे अग्नितत्त्व सब जगह व्यापक है पर एक जगह संघर्ष या किसी अन्य प्रयोगसे प्रकट होता है उसी तरह परमात्मा 'सर्वत्र' 'समान' रूपसे व्यापक है और 'प्रेम' रूपी प्रयोगसे प्रकट होता है।

नोट—५ *'प्रगट सदा तेहि रीती'*''''*'प्रेम तें प्रभु प्रगटै।'*—ब्रह्म तो सर्वत्र है पर प्रेम सर्वत्र नहीं। मन्दिर और मूर्तिमें प्रेमका संचार अधिक होता है इससे वहाँ लोग सिर झुकाते हैं। जो सबमें प्रभुको एक-सा देखते हैं, जिनका प्रेम सर्वत्र एकरस है जैसे प्रह्लादजीका, उन्हें अग्नि, जल, खम्भ सभीमेंसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। यथा—*'प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो'*—(वि०), *'काढ़ि कृपान कृपा न कहूँ पितु काल कराल बिलोकि न भागे। राम कहाँ? सब ठाउँ हैं खंभमें?' हाँ, सुनि हाँक नृकेहरि जागे'*—(क० उ० १२८), *'प्रेम बदों प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेश्वर काढ़े'* (क० उ० १२७), *'त्राहि तीन कहि द्रौपदी ऊँच उठायो हाथ। तुलसी कियो इग्यारहीं बसन बेष यदुनाथ॥'* (दो०) *'तुलसी परखि प्रतीति प्रीति गति आरतपाल कृपालु मुरारी। बसन बेष राखी बिसेष लखि बिरदावलि मूरति नर नारी॥'*—(कृष्ण गीतावली)

नोट—६ *'देस काल दिस''''''* इति। यहाँ प्रभुको वस्तु, देश और काल तीनोंसे अपरिच्छिन्न कहते हैं। *'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना'* में वस्तु और *'देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं''''* में देश और काल कहे।

टिप्पणी—३ *'मोर बचन सब के मन माना।'* भाव कि और लोगोंकी बातें सबके मनमें न आयीं, न जँचीं। यदि मनमें आतीं तो अनेक बातें क्यों कहते? मेरी बात सबको ठीक जँची। (क्योंकि सामञ्जस्य बैठ गया, किसीके अनुभवका खण्डन नहीं हुआ, बल्कि उपपत्ति हो गयी। वि० त्रि०) *'साधु साधु करि ब्रह्म बखाना'* से जनाया कि मेरी बातसे ब्रह्मा अधिक प्रसन्न हुए, इसीसे वे प्रशंसा करने लगे। और देवताओंके मन इस बातको मान गये, उनको यह बात अच्छी लगी, क्योंकि इन्होंने भगवान्‌की प्राप्तिका सुगम उपाय बताया, कहीं जाना-आना नहीं है। दूसरे शिवजीने अपना प्रमाण भी अपने वाक्यके साथ दिया है कि *'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना',* इससे जनाया कि शिवजीके वचनोंका विश्वास सबको है। *'साधु साधु'* कथनका भाव कि अच्छी बात सुनकर प्रशंसा करनी चाहिये, प्रशंसा न करना दोष है। दूसरे ऐसा न करनेसे कहनेवालेका अपमान सूचित होता है।

नोट—७ मा० म० और अ० दी० कारका मत है कि शिवजीने विचारा कि जिन परतम प्रभुके चरितमें गरुड़, सती और भरद्वाजको मोह हो गया उन अज अगुण ब्रह्मके दशरथपुत्र होनेमें विषयी सत्सङ्गविहीन

देवताओंको भला कब विश्वास होगा। और इस समय परब्रह्मका ही अवतार होना है। यदि देवता वैकुण्ठ गये तो वहाँसे आकाशवाणी होगी कि रावणका वध हमसे न होगा, फिर क्षीरसागर जानेपर भी यही उत्तर मिलेगा। तब ब्रह्मके अवतारका रहस्य प्रकट हो जायगा, जो प्रभु नहीं चाहते। दूसरे देवताओंको विश्वास भी न होगा। कभी-कभी किसी कल्पमें विष्णु आदिका भी अवतार हो जाता है, इससे ब्रह्माको भी पता नहीं चलता कि इस कल्पमें कौन अवतार लेगा। यह बात शिवजी ही जानते हैं। अत: उन्होंने गुप्तरूपसे कह दिया *'प्रेम तें प्रभु प्रगटै जिमि आगी।'* यहाँ *'प्रगट'* शब्द गूढ़ है। मनुसे प्रभुने यही शब्द कहा था *'होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे।'* देवता इस मर्मको न समझ पाये। किन्तु ब्रह्माजी इस संकेतको समझ गये। अत: वे प्रसन्न हुए।

टिप्पणी—४ (क) *'सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलक'''* ' इति। शिवजीने जो कहा कि प्रेमसे प्रभु प्रकट होते हैं, ब्रह्माने वही किया अर्थात् प्रेम किया। शरीर पुलकित हुआ, नेत्रोंसे जल बह चला, यह प्रेमकी दशा है [दूसरे, श्रीशिवजी परमभागवत हैं अत: उनके भक्तियुक्त वचन सुनते ही तुरत प्रेम उमड़ आया]। (ख) यहाँ ब्रह्माजीका मन, कर्म और वचन तीनोंसे भगवान्की भक्ति करना दिखाते हैं—मन हर्षित है, तन पुलकित है, वचनसे स्तुति करते हैं—*'रामहिं सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पाय। तुलसी जिन्ह तन पुलक नहिं ते जग जीवत जाय॥'* (दोहावली) (ग) *'सावधान मतिधीर'* कथनका भाव कि शिवजीके वचन सुनकर प्रथम प्रेममें मग्न हो गये, फिर सावधान हुए बुद्धिको धीर किया।

नोट—८ (क) इस दोहेके तृतीय चरणमें एक मात्रा कम है। कवि इससे यहाँ अपनी भी प्रेम-विह्वल-दशा प्रकट कर रहे हैं। (ख) *'जोरि कर'*। हाथ जोड़ना विशेष नम्रता तथा देवताको शीघ्र प्रसन्न करनेकी मुद्रा है। प्रसन्न करनेका यह एक ढंग है, यथा—*'भलो मानिहैं, रघुनाथ हाथ जोरि जो माथो नाइहै'* (विनयपत्रिका) पंजाबीजी लिखते हैं कि 'दोनों हाथ जोड़कर दर्शित किया कि हमने रावणके नाशके लिये दो सन्धियाँ छोड़े रखी हैं।' (ग) स्तुति यहाँ केवल ब्रह्माजीने की; क्योंकि ये सबसे बड़े हैं। ब्रह्माजी यहाँ सबके मुखिया बनकर स्तुति कर रहे हैं। पुन: भाव कि रावणको वर देने यही प्रथम गये थे। उसे वर देकर सब अनर्थका कारण ये ही हुए हैं, इससे सबका भार इन्हींके माथे है। पुन: प्राय: जब-जब अवतारके लिये स्तुति की जाती है तब-तब प्राय: ये ही सबकी ओरसे स्तुति करते हैं। यह परिपाटी है। अत: इन्होंने स्तुति की।

छं०—जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानै कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करौ अनुग्रह सोई॥ १॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित* मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निसिबासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥ २॥

शब्दार्थ—**घट**=पिण्ड, शरीर, हृदय। **अबिगत**=जो विगत न हो=जो जाना न जाय, अज्ञात, अनिर्वचनीय, यथा—*'राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर। अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥'* (२। १२६) =जिसमें किसीकी किञ्चित् गति या पहुँच नहीं, जिसकी दीप्ति सदा एकरस रहती है। यथा—**'निष्प्रभे**

* रहीत—१६६१।

विगतारेकौ' इत्यमरः। वि० त्रि० जी लिखते हैं कि '**इःस्वप्नादौ**' इस सूत्रसे यकारको 'इ' हुआ। '**विप्रकर्षः**' इस सूत्रसे युक्त वर्ण पृथक् हुए। '**अजादौ स्वरादसंयुक्तानां क ख त थ प फां गव दध बमाः**' इससे 'क' को 'ग' होकर 'अव्यक्त' का 'अविगत' रूप सिद्ध हुआ। **मुकुंदा**=मुक्ति देनेवाले।

अर्थ—हे देवताओंके स्वामी! दासोंको सुख देनेवाले! शरणागतरक्षक भगवान्! आपकी जय हो, जय हो! हे गौ और ब्राह्मणोंके हित करनेवाले! असुरोंके शत्रु और सिंधुसुता श्रीलक्ष्मीजीके प्रिय कंत (पति)! आपकी जय हो। हे देवताओं और पृथ्वीके पालन करनेवाले! आपके कर्म अद्भुत हैं उनका मर्म (रहस्य) कोई नहीं जानता। (ऐसे) जो स्वाभाविक ही कृपाल और दीनदयाल हैं वे (आप हमपर) कृपा करें॥ १॥ हे अविनाशी, घट-घटमें वास करनेवाले, सबमें व्याप्त, परमानन्दरूप, जिनकी गति कोई नहीं जानता, इन्द्रियोंसे परे, पवित्र-चरित, मायारहित, मुक्ति-भुक्तिके दाता! आपकी जय है, जय है! जिनके लिये वैराग्यवान् मुनिवृन्द मोहरहित होकर अत्यन्त अनुरागसे रात-दिन ध्यान लगाते और जिनके गुणगण गाते हैं उन सच्चिदानन्द भगवान्‌की जय!॥ २॥

टिप्पणी—१ '*जय जय सुरनायक जनसुखदायक*""' इति। (क) ☞ श्रीमद्भागवतमें भी ब्रह्मस्तुतिमें 'जय-जय' शब्द प्रथम है। '*जय*' शब्दका अर्थ है '**सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व**' अर्थात् आप सब प्रकारसे विजयी हों ('जय' शब्दका प्रयोग देवताओं वा महात्माओंकी अभिवन्दना सूचित करनेके लिये होता है जिसमें कुछ याचनाका भी भाव मिला रहता है। पुनः 'जय' भगवान्‌का एक नाम भी है। यथा—'**जयो जितारिः सर्वादिः शमनो भयभंजनः।**' (ख) आ० रा० राज्यकाण्ड १। १०३) इस प्रकार '*जय जय*'= हे सर्वविजयिन्! आप उत्कर्षको प्राप्त हों।) (ख) सुरनायक, जनसुखदायक इत्यादि सब विशेषण साभिप्राय हैं। (सुर, जन प्रणत आदि जिनका-जिनका यहाँ नाम ले रहे हैं उन्हीं-उन्हींके लिये यह स्तुति कर रहे हैं। आप सुरनायक हैं, अतः समस्त देवताओंकी रक्षा कीजिये। सेवककी रक्षा स्वामी ही करता है। सन्त और मुनि आपके जन हैं। वे सब दुःखी हैं। आप जनसुखदायक हैं; अतः उनका दुःख दूर करके उन्हें सुख दीजिये। आप प्रणतपाल हैं। सब देवता, सन्त, मुनि, गौ और ब्राह्मण सब आपकी शरण हैं, हम सबोंको शरण दीजिये। आप भगवन्त हैं, हम आपके भक्त हैं। भक्त और भगवन्तका सम्बन्ध है, यथा—'*ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥ सो केवल भगतन हित लागी।*' (१३। ४-५) '*भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।*' [पुनः, भाव कि आप षडैश्वर्ययुक्त हैं। यह सारा जगत् आपका ऐश्वर्य है। रावण उसे नष्ट करना चाहता है। उसकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है।] '*गो द्विज हितकारी*' हैं, आप गौ-ब्राह्मणके हितैषी हैं (रावण उन्हें खाये जाता है। उनका नाश कर रहा है, यथा—'*जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँउँ पुर आगि लगावहिं॥*' '*निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥*') उनका हित करना आपको उचित है। उनका हित कीजिये।

टिप्पणी—२ (क) यहाँतक सुरनायक, जनसुखदायक, गोद्विजहितकारी विशेषणोंसे सुर, सन्त, गौ, विप्र—ये चार नाम कहे। इन चारके लिये ही प्रार्थना करनेका भाव यह है कि इन्हीं चारके लिये भगवान्‌का अवतार होता है; यथा—'*बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।*' (१९२) अतः इन्हींको पीड़ित कहकर इनकी रक्षाकी प्रार्थना की। (ख) '*जय असुरारी।*' असुरारीका भाव कि देवता, गौ, ब्राह्मण, सन्त सबका हित असुरोंके वधसे होगा। (पुनः, भाव कि दैत्यदलन तो आपका सहज स्वभाव है सो आप क्यों भूल गये? अपना असुरारी नाम सत्य कीजिये। '*जय*' का भाव कि आप असुरोंपर सदा जयमान् हैं। '*जय*' शब्द यहाँतक तीन बार आया है। इसमें आदरकी वीप्सा है। रा० प्र० का मत है कि इससे व्याकुलता और प्रेम प्रकट होता है)। (ग) '*सिंधुसुता प्रिय कंता*' का भाव कि आप लक्ष्मीके प्रिय कन्त हैं, वे आपको कभी नहीं छोड़तीं। अतः असुरोंका वध करनेके लिये आप लक्ष्मीसहित अवतार

लीजिये। [पुन: भाव कि आप समुद्रकी कन्याके पति हैं। समुद्र दु:खी है। लक्ष्मीजीके सम्बन्धसे उसका दु:ख दूर कीजिये। पुन: लक्ष्मीजी धनकी अधिष्ठात्री देवी हैं, उनका जड स्वरूप ऐश्वर्य (श्री) नीचोंके हाथ पड़ी है, रावणका 'असद्व्यय' देख वे भी दु:खी हैं। (शीलावृत्त)]

नोट—१ वै० भू० जीका मत है ***'सुरनायक''''कंता'*** का भाव यह है कि आप भगवान् हैं, प्रणतपाल हैं; अत: गोद्विजादि पीड़ित होते हैं तब आगे कभी सुरनायक (राजा) बनते हैं, क्षीरशायी श्रीमन्नारायण भी आप ही बने जो आपका प्रथम अवतार है। यथा—'**जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभि:। संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया॥**'(भा० १। ३। १) शेषशायीरूप ऐश्वर्यप्रधान अवतार है और इस समय माधुर्यमय राजारूपकी आवश्यकता है; इसीसे प्रथम ***'सुरनायक'*** कहकर तब ***'सिंधुसुता प्रिय कंता'*** कहा गया।

टिप्पणी—३ ***'पालन सुर धरनी''''''करहु अनुग्रह सोई'*** इति। (क) ☞यहाँ भगवान्‌की परोक्ष स्तुति है। इसीसे कहते हैं कि जो इन-इन गुणोंसे विशिष्ट हैं, जो ऐसा है वह अनुग्रह करे।☞यहाँतक कर्मकाण्डके सम्बन्धसे स्तुति है। (ख) ***'पालन सुर धरनी अद्भुत करनी।'*** का भाव कि यदि कहें कि 'हम सुर-सन्त-गो-विप्रका हित कैसे करें?' तो उसपर कहते हैं कि सुर और पृथ्वीके पालन करनेमें आपकी अद्भुत करणी है, उसका मर्म कोई नहीं जानता कि आप क्या करेंगे। [अर्थात् आप इनका पालन करनेके लिये आश्चर्यजनक कर्म करते हैं, अनेक भाँतिके अद्भुत रूप धारण करते हैं। ***'मरम न जानै कोई'*** का यह भी भाव हो सकता है कि कोई यह मर्म समझ नहीं पाता कि जो काल समस्त ब्रह्माण्डोंको खा जाता है वह भी जिसका किंकर है वह समर्थ स्वामी वराहादि तन क्यों धारण करता है।—(पं०, रा० प्र०)] (ग) ***'सहज कृपाला'*** का भाव कि आप स्तुति-पूजा आदि किसी कारणसे नहीं कृपा करते। [आपके योग्य स्तुति, पूजा, जप, तप कोई कर ही क्या सकता है? जपतपादिसे कोई रिझानेका अभिमान करे तो महामूर्ख है। आप तो बिना कारण अपने सहज स्वभावसे ही कृपा करते हैं, यथा—***'सबपर मोहि बराबरि दाया।'*** (७। ८७)। दोहा २८ (४) देखिये। अब कृपामें देर क्यों हो रही है? हम आपकी कृपाहीका आश्रय लिये हुए हैं]। ***'दीनदयाला'*** का भाव कि इस समय समस्त देवमुनिवृन्द आदि दीन हैं। दीन आपको प्रिय हैं, यथा —***'जेहिं दीन पियारे बेद पुकारे द्रवहु सो श्रीभगवाना'***, ***'यह दिवान दिन दीन कनिगरे रीति सदा चलि आई।'***, [***'केहि दिवान दिन दीन को आदर अनुराग बिसेष'*** इति विनय०। यहाँ परिकराङ्कुर अलंकार है]। (घ) ***'करो अनुग्रह सोई।'*** अर्थात् जो अनुग्रह आप दीनोंपर सदा करते आये हैं वही अनुग्रह हमपर कीजिये। यथा—***'नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥'*** ***सोई***=वही जो इन गुणोंसे युक्त हैं।

बाबा हरीदासजी—***'पालन सुर धरनी'''' '*** का भाव यह है कि आप नर, नाग, यक्ष, गन्धर्वादि चराचर जीव-जन्तुओंको जो तीनों लोकोंमें जल, थल या नभमें जहाँ भी वे हैं अहर्निश जल-चारा देते हैं, क्षणमात्र किसीको भूलते नहीं, ऐसी अद्भुत करनी किसीमें नहीं है। आप सहजहीमें यह पालन-कार्य करते हैं, क्योंकि कृपाल हैं।—वही अनुग्रह हमपर कीजिये। हमारे अपराधोंको भुलाकर हमें जल-चारा दीजिये। यहाँ आकर ऐश्वर्यमान् राजा बनकर हमारा पालन कीजिये।

वैजनाथजी—(क) ***'पालन सुर धरनी' 'जो सहज कृपाला''''सोई'*** से जलंधर-रावणवाले कल्पके अवतारहेतु स्तुति सूचित की। जलंधरसे देवता और पृथ्वी व्याकुल हुए थे। शिवजी उसे मार न पाते थे, तब आपने ही कृपा की थी जिससे वह मारा गया। वही ***'सहज कृपाला'*** विष्णु अब फिर कृपा कीजिये; क्योंकि वही जलंधर अब रावण होकर हमें सता रहा है। (ख) ***'अद्भुत करनी मरम न जानै कोई'*** में जय-विजय-रावण-कुम्भकर्णहेतु वैकुण्ठवासी भगवान्‌की स्तुति है। अद्भुत करनी है इसीसे कोई मर्म नहीं जान पाता। सनकादि-ऐसे महर्षियोंको भी क्रोध आ गया और उन्होंने जय-विजयको शाप दे दिया—यह आपकी करनी है। जब जय-विजय हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए तब आपने अद्भुत नृसिंहरूप धारण कर खम्भसे प्रकट हो प्रह्लादकी रक्षा की, हिरण्यकशिपुको मारा। वराहरूपसे हिरण्याक्षको मारकर पृथ्वीका उद्धार किया, इत्यादि। वह जय-विजय अब रावणादि हुए हैं, अत: अब आप हमारी रक्षा इनसे भी करें।

प० प० प्र०— (क) छन्द १में भुशुण्डि-कल्प नारदशापसम्बन्धित कथाकी प्रार्थना है। प्रथम चरणमें सुर और जन (अर्थात् मुनि आदि भक्त) अपनी रक्षाके लिये शरणागति जनाते हैं, यह *'प्रनतपाल'* से सूचित किया है। किससे रक्षा करें और क्या करें? यह *'असुरारी'* और *'गो द्विज हितकारी'* से सूचित किया। तीसरे चरणसे जनाया कि *'सुर धरनी'* का पालन कीजिये, कैसे करें यह हम नहीं जानते, क्योंकि आपकी करनी अद्भुत है। चौथे चरणमें दयाके लिये दीनता प्रकट करते हैं। (ख) वैकुण्ठवासी विष्णु ही शेषशायी नारायण हो गये हैं। (पं० पु० जालन्धर-कथा) सिंधुसुताके प्रिय कान्त होकर क्षीरसागरमें रहते हैं। अतः यह छन्द विष्णु और नारायण-अवतारके कल्पोंकी कथामें उपयुक्त है।

टिप्पणी—४ *'जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।'''* इति। (क) घटवासी और अविनाशीका भाव कि सब चराचर नाशवान् हैं। चराचरमात्रमें आपका निवास है तो भी सबके नाश होनेपर भी आपका नाश नहीं होता, क्योंकि आप सदा अविनाशी हैं।*'ब्यापक परमानंदा'* का भाव कि व्यापक होनेसे अनुमान होता है कि सबके दुःखसे आप दुःखी होते होंगे सो बात नहीं है। आप परमानन्दरूप हैं। [पुनः भाव कि रावणके सामने नाशवान्की गति नहीं और हम सबोंका नाश अवश्य है। आप अविनाशी हैं, उसका नाश कर सकते हैं।—*'सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई।'*] (ख)*'सब घट बासी'* यथा—**'यथा सर्वेषु कुम्भेषु रविरेकोऽपि दृश्यते। तथा सर्वेषु भूतेषु चिन्तनीयोऽस्म्यहं मुने॥** [इति ब्रह्माण्डे।' अर्थात् जैसे सब घड़ोंमें एक ही सूर्य देख पड़ता है वैसे ही मेरा चिन्तन समस्त भूतोंमें करना चाहिये। 'गोतीत' इन्द्रियोंसे परे कहनेका भाव कि जबतक जीवकी इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें वासनारूप दृष्टि बनी रहती है तबतक उसे प्रभुकी दीप्तिका दर्शन नहीं होता। अतीत=अदर्शन। यथा—**'स्मातीते ऽस्तमदर्शने इत्यमरः।'** (वै०)* (ग) *'चरित पुनीत'* भाव कि आप अवतार लेकर जो चरित करते हैं वे समस्त जीवोंका कल्याण करनेवाले हैं, यथा—*'सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं।'* आगे जो होंगे वे इनको गा-गाकर भवपार होंगे। अतः जीवोंके कल्याणार्थ अवतार लेकर चरित कीजिये। (घ) *'माया रहित मुकुंदा'* इति। अर्थात् आप स्वयं मायासे परे हैं और दूसरोंको मायासे मुक्त करनेवाले हैं। [मायारहित अर्थात् सत्त्वादि गुण और शब्दादि विषय जो मायाके विकार हैं, उनका स्पर्श लेशमात्र आपको नहीं होता। (वै०)]

बाबा हरीदासजी—*'जय जय अबिनासी''मुकुंदा'* का भाव कि 'यदि आप कहें कि गर्भ-दुःख-भोग करनेको बुलाते हो तो यह बात नहीं है, आप षड्विकाररहित हैं, जीवधर्म-रहित हैं और सदा *'सब घट बासी'* हैं, हम तो एक ही घटमें वास करनेको बुलाते हैं। पुनः यदि कहें कि इन्द्रियाधीन होकर मलिन कर्म करनेको बुलाते हो तो उसपर कहते हैं कि आप गोतीत हैं, इन्द्रियोंके रसभोगसे परे हैं, आपके चरित पुनीत हैं, कभी गोठिल नहीं पड़ते। यदि आप कहें कि हमें परिवार-स्नेहद्वारा मोहमें पड़नेको कहते हो तो उसपर कहते हैं कि *'जेहि लागि'''* इत्यादि।'

टिप्पणी—५(क) *'जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी'''* इति। वैराग्य अनुरागका साधक है। यथा—*'एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धरम उपज अनुरागा॥'* (३। १६। ७) *'बिगत मोह'* कहा क्योंकि मोह अनुरागका बाधक है, यथा—*'मोह गए बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग।'* (ख) ☞*'जय जय अबिनासी'* से *'जयति सच्चिदानंदा'* तक ज्ञान-सम्बन्धसे स्तुति की। (तीन बार जय कहकर आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकारकी विजय कही। वि० त्रि०)

बैजनाथजी—*'जय जय अबिनासी''सच्चिदानंदा'* इति। यहाँ अन्तर्यामीरूपके सम्बोधनद्वारा साकेतविहारीकी स्तुति करते हैं। 'अनुराग' शब्दसे उपासना दर्शित करते हैं, क्योंकि अन्तर्यामीरूपमें केवल आनन्दमात्र है। ऋषियोंका उनमें अनुराग कहनेसे उपास्य, उपासक और उपासना तीनों भाव दर्शित किये गये हैं। यहाँसे अन्ततक साकेतविहारीके अवतारहेतु स्तुति है।

* परंतु इसका अर्थ 'अतीत (भूत) में स्म, अदर्शनम् अस्तं ये अव्यय हैं' ऐसा है।

प० प० प्र०—छन्द २ और ३ भगवान्के लिये ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश जिनके अंश (से उत्पन्न) हैं उन भगवान्को ही योगी लोग 'ध्याते' हैं। ब्रह्माजी सृष्टिके जनक हैं, पर वे ही प्रार्थना कर रहे हैं, अतः छन्द ३ भी भगवान्विषयक ही है। छन्द ४ विष्णु-अवतार रामकथासे सम्बन्धित लेना उचित है। इसमें मन्दर पर्वतका उल्लेख है। इससे कूर्मावतार लेनेवाले भगवान् सूचित किये गये हैं। यह तुलसीदास-संवादकी कथासे सम्बन्धित है। चौथे छन्दमें 'श्री' शब्द भी विष्णु-अवतारसूचक है।

मानसमें मुख्य कथा मनु-शतरूपासम्बन्धित रामावतारकी है। शिव-पार्वती-संवादवाली है। अतः उसके सम्बन्धित दो छन्द इसमें रखे हैं। मानसमें यह भी बताया है कि विष्णु, नारायण और परमात्मा राम एक ही हैं। *'मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥'* ऐसा श्रीरामजीको ही देवकृत स्तुतिमें कहा है। मीनादि अवतार तो विष्णुके ही हुए हैं। *'शचीपति प्रियानुज'* विष्णु ही हैं। *'जेहि पद सुरसरिता''' सीस धरी'* यह भी वामनावतारसे ही सम्बन्धित है इत्यादि। अतः इस विषयमें विशेष ऊहापोहकी आवश्यकता नहीं है। तथापि मानस सर्वमतसंग्राहक होनेसे उसमें तीनोंमें भेद भी दिखाया है। ☞ चारों छन्द एक समयकी स्तुतिमें भी उपयुक्त हैं। इन छन्दोंके बहुत शब्द कौसल्याकृत स्तुतिके छन्दोंमें हैं। मिलान करनेसे व्यक्त हो जायगा। यहाँ लिखना अनावश्यक है।

जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा॥
जो भवभय भंजन मुनिमनरंजन गंजन* बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥ ३॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवौ सो श्रीभगवाना॥
भवबारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥ ४॥

दो०—जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥ १८६॥

शब्दार्थ—**उपाना**=उत्पन्न करना, यथा—*'अखिल बिस्व यह मोर उपाया।'* **चिंत**=चिन्ता, याद, स्मरण, सुध, खबर, फिक्र। **अघारी** (अघ+अरि)=पापके शत्रु अर्थात् पापका नाश करनेवाले। **बानी**=स्वभाव, टेव, प्रकृति। यथा—*'लरिकाई ते रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥'*, *'श्रीरघुबीरकी यह बानि'* (वि० २१५)। **सयानी**=सयानपन, चतुराई। **क्रम**=कर्म।

अर्थ—जिन्होंने त्रिगुणात्मकरूप बनाकर बिना किसी दूसरे संगी या सहायकके सृष्टिको उत्पन्न कर दिया, वे पापके नाश करनेवाले आप हमारी भी सुध लीजिये, हम न भजन ही जानते हैं न पूजन। जो भवभयके नाशक मुनियोंके मनोंको आनन्द देनेवाले और विपत्ति-जालके नाश करनेवाले हैं, हम सब देववृन्द सयानपनेकी टेवको छोड़कर† मन-कर्म-वचनसे उन्हीं आपकी शरण हैं। सरस्वती, वेद, शेष और समस्त ऋषि किसीने भी जिसे नहीं जाना, जिन्हें दीन प्रिय हैं (ऐसा) वेद पुकारकर कहते हैं वे श्रीभगवान् कृपा करें। हे भवसागरके (मथन करनेके लिये) मन्दराचलरूप! सब प्रकारसे सुन्दर गुणोंके धाम, सुखकी

* खण्डन—१७०४, रा० प्र०।

† यही अर्थ मु० रोशनलाल, रा० प्र०, पं० रामकुमारजी, वीरकवि आदिने किया है। बैजनाथजीने 'बाणी' अर्थ किया है।

राशि! हे नाथ! आपके चरणकमलोंमें सब मुनि, सिद्ध और देवता भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर प्रणाम करते हैं। देवताओं और पृथ्वीको भयभीत जानकर और प्रेमयुक्त वचन सुनकर शोकसन्देहहारी गम्भीर आकाशवाणी हुई॥ १८६॥

करुणासिन्धुजी—*'त्रिबिध'* इति। 'तीन प्रकारकी सृष्टि सात्त्विक, राजस, तामस, देव, मनुष्य, दानव, विषयी, साधक, सिद्ध इत्यादि। वा, त्रिधा सृष्टि अर्थात् जीव-सृष्टि, ईश्वरीय सृष्टि और ब्रह्मसृष्टि। जीव-सृष्टिवाले स्वप्नावस्था और संसारमें वर्तमान हैं, ईश्वरीय सृष्टिवाले जाग्रत्‌में और ब्रह्मसृष्टिवाले तुरीयामें; प्रमाणमागमसारे—'**त्रिधासृष्टिः पुरो जाता तत्रैका जीवसंज्ञका। द्वितीया चेश्वरीसृष्टिर्ब्रह्मसृष्टिस्तृतीयका॥ जीवसृष्ट्या द्विधावस्था सुषुप्तिः स्वप्नमध्यगा। ऐश्वर्य्या जागरावस्था ब्रह्मसृष्ट्या तुरीयका॥ ब्रह्मसृष्टिसमुत्पन्नास्तुरीयात्मान एव ये।**""'। वा काल-कर्म-स्वभाव, उत्पत्ति-पालन-संहार।' [स्वप्न-सृष्टिको जीवसृष्टि इसलिये कहा गया है कि स्वप्नका सम्बन्ध केवल द्रष्टा जीवसे ही रहता है, अन्य किसीसे नहीं। (वेदान्तभूषणजी)]

नोट—१ *'त्रिबिध बनाई'* का अर्थ दो प्रकारसे किया गया है। 'तीन प्रकारकी सृष्टि' बनायी। वह तीन प्रकारकी सृष्टि क्या है, यह करुणासिन्धुजीकी टिप्पणीमें लिखा गया है। बैजनाथजीने 'तीन प्रकारसे बनायी' अर्थ करते हुए सत्त्व, रज, तम तीन प्रकारसे बनाना लिखा। राजसगुणसे ब्रह्मा उत्पत्ति, सत्त्वगुणसे विष्णु पालन और तमोगुणसे शङ्करजी संहार करते हैं। पंजाबीजी सत्त्व-रज-तम-गुणी सृष्टि तीन प्रकारकी मानते हैं। *'संग सहाय न दूजा'* का भाव कि '**एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म**' होनेसे उसके साथ उपादाननिमित्त कारण कह नहीं सकते। (पं०)

२ श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी—*'संग सहाय न दूजा'"*=बिना दूसरे किसी संगी अथवा सहायकके अकेले ही (या स्वयं अपनेको त्रिगुणरूप ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप बनाकर अथवा बिना किसी उपादान कारणके अर्थात् स्वयं ही सृष्टिका अभिन्न-निमित्तोपादान कारण बनकर) तीन प्रकारकी सृष्टि बनायी। (मानसाङ्क)

३ *'सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई'* इति। श्रीपंजाबीजी आदिका आशय यह है कि संसारमें जितने भी कार्य होते हैं उनमें प्रायः उपादान (समवायि), निमित्त और साधारण ये तीन कारण होते हैं। जैसे स्वर्णका कुण्डल कार्य है। स्वर्ण उपादान कारण है। स्वर्णकार—सुनार तथा जिसके निमित्त वह बनाया गया—दोनों निमित्तकारण हैं। अग्नि जिसमें सोना गलाया जायगा, हथौड़ी, निहाई आदि उपकरण साधारण कारण हैं। '**ब्रह्म**' शब्दका प्रधान अर्थ विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तानुसार '**चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म**' है। ब्रह्मके '**एकोऽहं बहु स्याम्**' आदि संकल्पमात्रसे सृष्टिकी रचना हो जाती है। इसलिये उसको साधन-सामग्रीकी आवश्यकता नहीं। और, 'संकल्प' भी उससे पृथक् नहीं है, इससे निमित्त और उपादान—दोनों वह स्वयं ही है। *'सहाय न दूजा'* भी इसी भावको पुष्ट करता है। इससे भगवान्‌में अचिन्त्य सामर्थ्य दिखलाया।

सांख्यकारिकामें सोलहवीं कारिकापर श्रीगौड़पादाचार्यजीके भाष्यमें भी तीन प्रकारकी सृष्टिका उल्लेख है। यथा-'**प्रधानात् प्रवृत्तास्त्रयो लोकानैकस्वभावा भवन्ति, देवेषु सत्त्वमुत्कटं रजस्तमसी उदासीने तेन तेऽत्यन्तसुखिनः, मनुष्येषु रज उत्कटं भवति सत्त्वतमसी उदासीने तेन तेऽत्यन्तदुःखिनः, तिर्यक्षु तम उत्कटं भवति सत्त्वरजसी उदासीने तेन तेऽत्यन्तमूढाः॥**' अर्थात् प्रकृतिसे तीन लोक हुए हैं। ये तीनों भिन्न-भिन्न स्वभावोंके होते हैं। देवोंमें सत्त्वगुण विशेष रहता है, इसलिये वे अत्यन्त सुखी रहते हैं। मनुष्यमें रजोगुण विशेष रहता है, इससे वे अत्यन्त दुःखी रहते हैं और पशु-पक्षी आदि अन्य योनियोंमें तमोगुणकी प्रधानता होनेसे वे अत्यन्त मूढ़ होते हैं।—यह सांख्यमत है। वेदान्तमतसे ब्रह्मसे ही सृष्टि होती है। इस प्रकार देव, मनुष्य और तिर्यक् अर्थात् सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारकी सृष्टि हुई। ☞ स्मरण रहे कि कोई भी सृष्टि केवल सत्त्व, केवल रज अथवा केवल तमसे उत्पन्न नहीं होती, किंतु उनके सम्मिश्रणसे होती है। जिसमें जिस गुणकी प्रधानता है वह उसी नामसे कही जाती है।

नोट—२ इससे मिलता हुआ श्लोक अ० रा० में यह है—'**मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यवसि लुम्पसि।**

जगत्तेन न ते लेप आनन्दानुभवात्मनः॥'(१। २। १५) अर्थात् आप अपनी त्रिगुणमयी मायासे जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और लय करते हैं पर उससे लिप्त नहीं होते। आप ज्ञानानन्दस्वरूप हैं।

टिप्पणी—१ (क) *'जेहि सृष्टि उपाई'''''।'* भाव कि हम सृष्टिकर्त्ता नहीं हैं। हम भी आपकी ही सृष्टि हैं (आपने ही हमें उत्पन्न किया और यह सारा जगत् भी आपने ही उत्पन्न किया है। यथा—**'जो** ***कर्त्ता पालक संहरता', 'जो सृजत पालत हरत'*** इत्यादि। सृष्टि आपकी वस्तु है, अतः उसकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है। ***'संग सहाय न दूजा'*** अर्थात् संसाररचनामें आपका कोई और साथी नहीं है कि जिससे जाकर हम अपनी विपत्ति कह सुनावें)। (ख) ***'करउ अघारी चिंत हमारी।'*** अघारीका भाव कि अघरूपी राक्षसके आप नाशक हैं। अथवा, जैसे अघासुरके पेटमें बालक, वत्सोंको बचाया है वैसे ही हमको राक्षस ग्रास कर रहे हैं, हमारी सुध लीजिये। जैसे बालक, वत्स भक्ति-पूजा कुछ नहीं जानते थे वैसे ही हम कुछ नहीं जानते। भजन-स्मरण हममें कुछ नहीं है, एकमात्र आपकी शरण और आपकी कृपा ही आशा-भरोसा है। ('अघ' का अर्थ 'दुःख' भी है। यथा—**'अघस्तु वृजने दुःखे'** इति। अमरकोश) इससे भाव यह होगा कि 'आप दुःखोंके नाशक हैं, हमारे दुःखोंको दूर कीजिये।'

टिप्पणी—२ ***'जो भव भय भंजन'''*** इति। (क) मन, कर्म और वचनसे समस्त देवताओंका शरण होना कहते हैं। इस प्रसङ्गमें यह कथन चरितार्थ कर दिखाया है। सब देवताओंका मन प्रभुमें लगा है, यथा—***'मोर बचन सब के मनमाना।'*** वचनसे सभी प्रभुकी ही चर्चा कर रहे हैं और स्तुतिमें लगे हैं। यथा—***'पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥', 'कहँ पाइअ प्रभु करिय पुकारा।'*** और सब तनसे प्रभुको प्रणाम कर रहे हैं। यह कर्मसे शरण होना है। यथा—***'नमत नाथ पद कंजा।'*** (***'नमत नाथ'*** यह कहते ही सब प्रणाम करने लगे हैं यह भी यहाँ जना दिया)। (ख) ***'बानी छाड़ि सयानी'*** कहनेका भाव कि जबतक जीवके मन, वचन और कर्ममें अपने सयानपनेका भाव बना रहता है तबतक प्रभु कृपा नहीं करते। इससे कहा है—***'मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥'*** (२००। ६) ***'सयानी'*** का अर्थ 'चतुराई' यहाँ खोल दिया गया। [देखिये द्रौपदीजीको जबतक अपने वचनका भरोसा रहा कि मैं इससे सबको परास्त करूँगी। मनमें अपने वीर पतियोंका बल-भरोसा रहा और शरीरसे अपनी साड़ीको उघड़ने न देनेका विचार रहा, तबतक भगवान्‌ने कृपा नहीं ही की। जब तीनोंका अभिमान छोड़कर हाथ उठाकर प्रभुको पुकारा तब तुरत भगवान् वस्त्ररूप हो गये। सुग्रीवने वचनसे कहा था कि ***'बालि परम हित'***। मनसे छल और शरीरसे बल दिखलाता रहा, तबतक प्रभुने बालिको नहीं मारा। जब तीनोंका भरोसा न रह गया, यथा—***'बंधु न होइ मोर यह काला', 'बहु छल बल सुग्रीव करि हिय हारा''''।'***(४। ८)। तब ***'मारा बालि राम तब'।*** इसी तरह बालिको तीनोंका अभिमान था। ***'सम दरसी रघुनाथ', 'अस कहि चला महा अभिमानी। तृनसमान सुग्रीवहि जानी॥'*** क्रमसे वचन, मन और कर्मके अभिमान थे। बाण लगनेके पश्चात् तीनोंका सयानपन मिटा। ***'धर्महेतु अवतरेहु गोसाईं।'''अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥'*** यह वचनचातुरी भगवान्‌के उत्तरसे मिटी। यथा—***'सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।'*** मनका अभिमान मिटा, हृदयमें प्रीति हुई और वह शरण हुआ। यथा—***'हृदय प्रीति', 'अंतकाल गति तोरि।'*** कर्मका भी अभिमान न रह गया, यह ***'प्रभु अजहूँ मैं पापी अंत काल गति तोरि।'*** (४। ९) से स्पष्ट है। अथवा ***'बिकल महि'*** से कर्मका अभिमान गया। तब प्रभुने कृपा की। यथा-***'बालि सीस परसेउ निज पानी'*** इत्यादि।]

वि० त्रि०—***'सरन सकल सुर जूथा'*** इति। भाव यह है कि भगवान् शरणागतके उद्धारमें समर्थ हैं, दयाके समुद्र, कृतज्ञ और सुव्यवस्थित हैं, श्रेयकी प्राप्ति करा देते हैं। श्रेयके पीछे नहीं पड़ना चाहिये। निर्हेतुक उपासना ही सच्ची उपासना है। वह आर्त और अर्थार्थीको अपनी नियतिसे कर्मपाककी अपेक्षा न करके फल देते हैं। वह अनन्य शरणका योगक्षेम वहन करते हैं। अपनी नियतिको भी हटाकर उससे साधनका सम्पादन कराके उसे फलसे युक्त करते हैं। यही उनका बड़ा भारी स्वातन्त्र्य है कि प्रारब्ध और नियति भी उनसे विमुखको ही होती है।

टिप्पणी—३ *'सारद स्रुति सेषा·····'* इति। (क) आपको कोई नहीं जानता, यथा—*'बिधि हरि संभु नचावनिहारे। तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। औरु तुम्हहिं को जाननिहारा॥'* (२। १२७), *'सारद सेष महेस बिधि आगम निगम पुरान। नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥'* (१। १२) **'न त्वां केचित् प्रजानते।', 'ऋते मायां विशालाक्षीं·····॥'** (वाल्मी० ७। ११०। १०—१२) अर्थात् श्रीसीताजीको छोड़कर दूसरा कोई आपको नहीं जानता। ये ब्रह्माजीने श्रीरामजीसे कहा है। इसीसे तो श्रीसीताजी सबकी आचार्या हैं। (ख) *'सारद श्रुति·····'* कहकर *'जेहि दीन पिआरे'* कहनेका भाव कि जो ऐसे अगम्य हैं, अज्ञेय हैं वे ही दीनोंको प्राप्त होते हैं क्योंकि दीन उनको प्रिय हैं। विशेष दोहा १। १८ तथा २८। ४ में देखिये। (ग) *'बेद पुकारे'* का भाव कि वेद साक्षी हैं, प्रमाण हैं। उन्होंने आपको दीनबन्धु, दीनदयाल आदि कहा है। (घ) *'द्रवौ सो श्रीभगवाना'* इति। दीनोंके मनोरथ पूर्ण करनेके सम्बन्धसे 'श्रीभगवान्' विशेषण दिया।

नोट—३ (क) *'भव बारिध मंदर'*= संसारसागरका मन्थन करनेको मन्दराचलरूप। भाव कि आपका नाम भवसागरको मथकर सज्जनरूपी देवताओंको शान्त-सन्तोषादि गुणरूपी अमृत देनेवाला है। (वै०) पुनः भाव कि आप 'संसार-समुद्रमें डूबनेवालोंके आधारभूत हैं। वा, संसारसमुद्रको मथकर सज्जनरूपी रत्नको निकालनेवाले हैं। (रा० प्र०) श्रीकान्तशरणजी *'भव बारिधि'* से 'मुमुक्षुके हृदयसिंधु' का अर्थ करते हुए लिखते हैं कि 'दैवी-आसुरी' सम्पत्तियाँ मथनेवाली हैं। ११ इन्द्रियाँ और ३ अन्तःकरण शुद्ध होकर १४ रत्नरूपमें प्रकट होते हैं। भव-सागरके मथनेवाले देवता, दैत्य, चौदह रत्न और जल-जन्तु आदि क्या हैं, यह पूर्व *'भवसागर जेहि कीन्ह·····'* दोहा १। १४ की टिप्पणी में भी देखिये। (ख) *'नमत'* का भाव कि आपकी बान है कि *'सकृत प्रनाम किए अपनाये।'* (ग) *'सब बिधि सुन्दर'* का भाव है कि थोड़ी ही सेवासे प्रसन्न हो जाते हैं, जनके अपराधपर कभी रिसाते नहीं। *'गुनमंदिर सुख पुंज'* का भाव कि आपके भजनसे भक्तजन अनेक उत्तम दिव्य गुणों और सुखसमूहको प्राप्त हो जाते हैं।' (बाबा हरीदासजी)

वि० त्रि०—भगवान् भवसागरके लिये मन्दर हैं। समुद्रके पार तो वानर भी गये पर उन्हें उसकी गहराईका पता नहीं; उसकी गहराईका पता तो मन्दराचलको है। इसी भाँति साधक प्रयत्नसे भवपार चले जाते हैं पर उसके तलका पता श्रीभगवान्को ही है। वे ही उसमेंसे अमृतका उद्धावन करके दैवी प्रकृतिवालोंकी पुष्टि कर सकते हैं, उन्हें विजययुक्त कर सकते हैं।

टिप्पणी—४ ☞*'जेहि सृष्टि·········'* से *'नमत नाथ पद कंजा'* तक भक्ति-सम्बन्धसे स्तुति की गयी। इस तरह यह स्तुति कर्म, ज्ञान और उपासना तीनोंसे युक्त है। नमन करना, शरण होना इत्यादि भक्ति है। उसीका एक अङ्ग शरणागति वा प्रपत्ति है।

(खर्रा)—ब्रह्माजी चतुरानन अर्थात् चार मुखवाले हैं, इसीसे स्तुतिमें चार छन्द हैं। वेदोंमें प्रधान कर्म, ज्ञान और उपासना है सो प्रथम छन्दमें ऋग् कर्म, दूसरेमें यजु ज्ञान और तीसरेमें उपासना सामवेद है। ब्रह्माके मुखसे वेद निकले हैं, इसीसे गोस्वामीजीने छन्दहीसे कहा, दोहा-चौपाईसे न कहा और चौथे छन्दमें दीनता कही। यहाँ घाटोंका भी क्रम है। याज्ञवल्क्यका कर्मघाट है सो पहले छन्दमें, शिवजीका ज्ञानघाट है सो दूसरे छन्दमें, भुशुण्डिजीका उपासनाघाट तीसरेमें और गोस्वामीजीका दैन्यघाट है सो चौथेमें है। दीनतावालेका कर्म है नम्रता। अतएव *'नमत नाथ पद कंजा'* कहा जिसमें सबका अधिकार है।

नोट—४ इस स्तुति और आकाशवाणीके सम्बन्धमें मतभेद है। सन्त श्रीगुरुसहायलालजी कहते हैं कि यह स्तुति सभीकी भावनासे युक्त है, क्योंकि ब्रह्माजी सभीकी ओरसे स्तुति कर रहे हैं। (१८५। १—५) में दिखा आये हैं कि यहाँ तीन मत, सिद्धान्त वा उपासनाके लोग एकत्रित हैं। उसीका निर्वाह यहाँ भी है।—(मा० त० वि०) इस प्रकार प्रथम चार तुकोंमें *'सिंधुसुधा प्रियकंता'* पदसे क्षीरशायी भगवान्की वन्दना हुई। फिर आठ तुकोंमें वैकुण्ठभगवान् और महाविष्णुके अवतारवाले कल्पोंकी स्तुति है और अन्तमें श्रीसाकेतविहारीजी परात्पर ब्रह्मकी स्तुति है।

मानसमयङ्ककार लिखते हैं कि 'ब्रह्माकी स्तुति और आकाशवाणी नारदकल्पकी कथा है, जिसमें नारदशापवश श्रीमन्नारायणने अवतार लिया। शिवजी परतम कल्पकी कथा कह रहे थे, परंतु उनका एकाएक प्रकट होना सबको विश्वासप्रद न होगा; अतएव यहाँ शिवजीने कल्पान्तरकी कथा मिला दी जिससे सबको बोध हो जावे। ब्रह्माकी स्तुतिके बाद आकाशवाणी हुई, यह क्षीराब्धिवासी श्रीमन्नारायणकी है; यह बात आकाशवाणीके वचनोंसे सिद्ध होती है। जिस कल्पमें यह स्तुति की गयी थी उसमें कश्यप-अदिति दशरथ-कौशल्या हुए थे। मानसरामायणमें कल्पभेदकी कथा जहाँ-तहाँ सूक्ष्मरीतिसे वर्णित है। वैसे ही यहाँ भी है। परतम अवतारमें स्तुति आदिकी आवश्यकता नहीं पड़ती, केवल शापित अवतार देव-स्तुति सुनकर होते हैं और परतम प्रभु तो मनुके प्रेमवश प्रसन्न होकर वरदान देकर स्वयं बिना विनयके प्रकट हुए। '*जय जय सुरनायक*' से '*अब सो सुनहु जो बीचहि राखा*' तकका प्रसङ्ग परतम कल्पके बाहरकी कथा है।'

श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि 'परतम कल्पमें स्तुति नैमिषारण्यमें मनुद्वारा हो चुकी है। यथा—'**सुनु** ***सेवक सुरतरु***'''।, (१४६। १) से '***देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।***' (६) तक। स्तुतिके बाद प्रभुने प्रकट होकर कहा '***होइहहु अवधभुआल तब मैं होब तुम्हार सुत।***' (१५)'''''''' एक कल्पमें दो बार स्तुति तथापि दो बार आकाशवाणी कदापि नहीं हो सकती।'

मेरी समझमें जैसे कश्यप-अदितिकी स्तुतिपर उनको वर दिया कि मैं तुम्हारा पुत्र तुम्हारे अवधभुआल होनेपर होऊँगा और रावणका अत्याचार होनेपर ब्रह्माकी स्तुतिपर भगवान् अवतार लेनेको कहते हैं, तब अवतार होता है; वैसे ही यहाँ भी प्रथम मनुके लिये वरदान हुआ कि हम तुम्हारे अवधभुआल होनेपर तुम्हारे पुत्र होंगे। जब पुत्र होनेका समय आया तब रावणके अत्याचारसे ब्रह्माजीने स्तुति की और प्रभुने अवतार लेनेको कहा। इस तरह परतम प्रभुका अवतार गुप्त भी रहेगा।

टिप्पणी—५ '*जानि सभय सुर*''' इति। भगवान्‌की प्रतिज्ञा है कि —'**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।**' देवता आदि सभीत हैं, इसीसे शोक-संदेहहारिणी वाणी हुई। [(☞यहाँ आकाशवाणी होनेमें दो कारण दिखाये। एक तो देवता और पृथ्वी दोनोंके भयभीत होनेसे, दूसरे स्नेहयुक्त वचन सुननेसे। शङ्करजीने कहा ही है कि '*प्रेम तें प्रगट होहिं।*' अतः आकाशवाणीरूपसे प्रकट हुए। और सब सभीत शरणमें आये हैं, अतः अभयदायक वाणी बोली गयी।) 'गम्भीरका भाव कि इसमें अक्षर थोड़े ही हैं, पर अर्थ बहुत हैं। (रा० प्र०) ध्वनि भी गम्भीर है। (पं०) बोलनेवाला अदृश्य है और शब्द सुनायी पड़ रहा है, इसलिये '*गगन गिरा गंभीर*' कहते हैं। अथवा जो वाणीका भी वाणी है, उसकी गिरा आकाशद्वारा ही प्रकट होती है। कितने ऊपरसे वाणी आ रही है, इसकी थाह न होनेसे गम्भीर कहा। (वि० त्रि०)]

वेदान्तभूषणजी—१६ तुकोंमें स्तुति करनेका भाव कि जैसे आप लोकसृजनार्थ १६ कलाओंसे शेषशायीरूपसे अवतरित हुए थे। (भा० १। ३। १) वैसे ही अब लोकरक्षणार्थ पुनः अवतार लेकर अपने अनन्त दिव्य गुणोंमेंसे १६ गुण तो अवश्य ही प्रकटकर भक्तोंको आनन्द दीजिये। परमावश्यक वे १६ गुण ये हैं—१ कला (ऐश्वर्य)। २ धर्म (ज्ञानस्वरूपता)। ३ यश (यशका कारण तेज)। ४ श्री (शक्ति)। ५ मोक्ष (निर्बन्धता)। ६ भरण (धारण-शक्ति)। ७ पोषण (कल्याणप्रद शक्ति)। ८ आधार सर्वव्यापकता, सर्वशरीरता। ९ उत्पत्ति। १० पालन। ११ संहारशक्ति। १२ शत्रुनाशक शक्ति। १३ रक्षण (विमुख जीवोंको स्वसम्मुख करनेकी शक्ति)। १४ शरण। १५ लालन (प्रेमप्रदर्शन)। १६ सामर्थ्य। इन्हीं उपर्युक्त १६ को षोडश कला या अंश कहते हैं।

जीव प्रभुके वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, सर्वशक्तित्व, कृपा, करुण, सौन्दर्य, क्षमा आदि दिव्य कल्याण-गुणोंका अनुसन्धान करते हुए उनसे अनेक सम्बन्धमेंसे शेष-शेषी, पिता-पुत्र, भार्या-भर्तृत्व, नियाम्य-नियामक, आधाराधेय, सेवक-स्वामी, शरीर-शरीरी, धर्म-धर्मी, रक्ष्य-रक्षक, व्याप्य-व्यापक, भोक्ता-भोकृत्व, अशक्त-सर्वशक्तिमत्व, सख्य, अकिञ्चन-अवाप्तसमस्तकामत्व, पतित-पतितपावन और शरण-शरण्य षोडशसम्बन्धपूर्वक भगवल्लीलाविग्रहका आनन्दानुभव करते हैं।

वि० त्रि०—यह प्रभुका प्रथम गुणग्राम जगमङ्गलरूप है, यथा—*'जगमंगल गुनग्राम राम के।'* इसे अश्विनी नक्षत्र माना गया है: अश्विनी नक्षत्रमें तीन-तीन तारे चमकते हैं। इस स्तुतिमें भी तीन रूपोंकी चमक है। विष्णु, क्षीरशायी और ब्रह्म। अश्विनी नक्षत्रकी आकृति अश्वमुख-सी है। ब्रह्मविद्याके प्रधान उपदेष्टा भगवान् हयग्रीव हैं। उसी ब्रह्मविद्याका निरूपण इस स्तुतिमें है, इससे अश्वमुख माना। अथवा सामवेदके तुल्य होनेसे अश्वमुख माना। यह स्तुति ही जगमङ्गलके लिये ब्रह्मदेवने की थी।

प० प० प्र०—ब्रह्माकृत स्तुति और अश्विनी नक्षत्रका साम्य। (क) अनुक्रम—यह पहली स्तुति है और पहला नक्षत्र अश्विनी है। (ख) नाम-साम्य—नक्षत्रका नाम अश्विनी है। अश्विनी=घोड़ी। सूर्यपत्नी संज्ञाने अश्विनीका रूप लिया और पृथ्वीपर रही। इसकी खोजमें सूर्य यहाँ आये और दो पुत्र हुए, वे ही अश्विनीदेव हैं। अश्वके समान रूपवाली होनेसे अश्विनी नाम है तथा **'अश्नुते व्याप्नोति अश्वः।'** इस स्तुतिमें प्रभुके विविधरूपोंके व्यापक स्वरूपमें वर्णन किया ही है। छन्दोंको पढ़नेकी गति भी अश्वकी गतिके समान ही है। अश्व जब मुकामके समीप आने लगता है तब उसकी गतिमें फेर पड़ता है। वैसा फेर अन्तिम छन्दमें भी है। स्पष्ट करनेमें विस्तार करना होगा, उसके लिये यहाँ स्थल नहीं है। (ग) तारा-संख्यासाम्य।—अश्विनीमें तीन तारे हैं। इस स्तुतिमें *'सिंधुसुता प्रिय कंता'* (शेषशायी नारायण), सर्वव्यापक प्रभु भगवान् सगुण ब्रह्म और श्रीभगवान् (=लक्ष्मीपति वैकुण्ठाधीश विष्णु) ये तीन तारे हैं। आश्चर्यकी बात यह है कि इस नक्षत्रके तीन तारे एक प्रतिके नहीं हैं; दूसरे, तीसरे और चौथे प्रतिका एक-एक तारा है। (नक्षत्र चित्रपट श्रीरघुनाथ शास्त्री)। इस स्तुतिमें सगुण ब्रह्म दूसरी प्रतिका तारा है। निर्गुण-निराकार ब्रह्म प्रतिका तारा इसमें नहीं है। शेषशायी नारायण तीसरी प्रतिका (III Dimension) है और विष्णु चौथी प्रतिका है। यह साम्य कितना अद्भुत है! (घ) रूप-आकारसाम्य—नक्षत्रका आकार **'अश्वमुखम्'** कहा है। सिंधुसुता प्रिय=लक्ष्मीका प्रिय उसका भाई है। उच्चैःश्रवा भी मन्थनसे ही निकला है, अतः वह भाई है और प्रिय है। यथा—*'बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही।'* (ङ) नक्षत्रका देवता अश्विनीकुमार है। संज्ञा जब अश्विनी बनी तब सूर्यको पृथ्वीपर अश्वरूपमें आना पड़ा और अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। वैसे ही *'राम सच्चिदानंद दिनेसा'* को अश्विनीस्तुतिसे इस पृथ्वीपर आकर पुत्ररूपसे अवतीर्ण होना पड़ा। (च) फलश्रुति—*'जग मंगल गुनग्राम राम के।'* (१। ३२। २)। यह इस स्तुतिकी फलश्रुति है। यह स्तुति रामजन्मका साक्षात् हेतु है—*'राम जनम जग मंगल हेतू।'* गुनमंदिर (=गुणग्राम) शब्द स्तुतिमें ही है। यह स्तुति जगका मङ्गल करनेवाली है।

☞ यहाँसे उत्तरकाण्ड दो० ५१ की नारदस्तुतितक २९ स्तुतियाँ हैं। नारदकृत स्तुति रेवतीनक्षत्र है। २८ नक्षत्रोंसे नक्षत्रचक्र बना है। वैसे ही स्तुतिरूपी नक्षत्रचक्र नक्षत्रमण्डल मानसमें है। अश्विनी-स्तुतिके कर्ता 'विधि' हैं और रेवती-स्तुतिके कर्ता नारदजी हैं—*'गए जहाँ बिधि धाम'* इस प्रकार मण्डलाकार पूरा किया गया। यह एक परम अद्भुत अनुपम काव्यकला है। ऐसे-ऐसे अद्भुत कलाओंके बहुत नमूने मानसमें हैं।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहिं लागि धरिहौं नर बेसा॥ १॥

अर्थ—हे मुनियो, सिद्धो और सुरेश! डरो मत, तुम्हारे लिये मैं नरवेष धारण करूँगा॥ १॥

टिप्पणी—१ यह अभयप्रद वाणी है। आगे पुनः कहा है *'निर्भय होहु देव समुदाई।'* *'जनि डरपहु'* का भाव कि सब सभीत होकर शरणमें आये हैं, यथा—*'मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा।'* ब्रह्माजीने कहा भी है कि *'सरन सकल सुरजूथा।'* अतः आकाशवाणी कहती है कि हम तुम्हें शरणमें लेते हैं, तुम सभीत हो, हम तुम्हारे भयको हरण करेंगे, यथा—*'जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं॥'* (५। ४४) किस तरह रक्षा करेंगे सो दूसरे चरणमें कहते हैं कि *'तुम्हहिं लागि धरिहौं नर बेसा।'* यह वाणी *'हरनि सोक संदेह'* है। *'जनि डरपहु'* से शोक हरण किया और *'धरिहौं नरबेष'* से संदेह दूर किया। संदेह था कि मनुष्य तो राक्षसोंका आहार है, वह रावणको कैसे मार सकेगा। भगवान् कहते हैं कि संदेह दूर करो, हम ही मनुजरूप धारण करेंगे। २ *'तुम्हहिं लागि'* का भाव कि वैसे तो ईश्वरके लिये नर-शरीर धारण करना न्यूनताकी बात है, पर तुम्हारे हितार्थ हम यह भी करेंगे।

इस तरह *'सुरनायक, जन सुखदायक, सहज कृपाला'* आदि विशेषणोंको सत्य किया। 'नरवेष' धारण करनेके भाव *'राम भगत हित नर तन धारी।'* (२४। १)। मा० पी० भाग १ में आ चुके हैं।

वि० त्रि०—*'धरिहौं नर बेसा'*—भाव कि 'कर्मविपाक और आशयसे जिसका सम्पर्क नहीं, ऐसा पुरुष-विशेष ईश्वर है। यथा—'**कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।**'(यो० सू०)। तब वह मनुष्य क्यों होने लगा। अतः कहते हैं कि यद्यपि कर्मविपाक और आशयसे मेरा लगाव नहीं है फिर भी तुम्हारे लिये मैं नर-शरीर धारण करूँगा। ध्वनि यह निकलती है कि मैं तुम्हारे लिये नर-शरीर धारण करूँगा परंतु तुम लोग भी अपने लिये वानर-शरीर धारण करो।

वेदान्तभूषणजी—ब्रह्मलोक जानेमें और स्तुतिके अन्तमें नमस्कार करनेमें मुनियोंका वर्णन आया है, विचार करनेमें नहीं। आकाशवाणीमें प्रथम 'मुनि' का नाम कहकर भगवान्ने सूचित किया है कि हमारे अवतार लेनेके प्रधान कारण 'मुनि' ही हैं। भगवद्भक्त होना मुनिका प्रधान लक्ष्य है; इसीसे भक्तोंकी 'मुनि' संज्ञा थी। यथा—'**भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम्।**'(भा० १। २। २५) (अर्थात् पूर्वकालमें मुनिजन भगवान् अधोक्षजका भजन करते थे)। गोस्वामीजीने भी भक्तोंके लिये ही प्रधानतया अवतारका होना कहा है। यथा—*'सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि प्रगट किये प्रहलादा॥'* भगवान्ने स्वयं भी कहा है—*'तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥'* (५। ४८) भगवती श्रुति भी यही कहती है—'**उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना**' उपासकोंका कार्य एकपाद्विभूतिमें बिना अवतार लिये नहीं हो सकता क्योंकि वे तो परमेश्वरको विविध सम्बन्ध-सूत्रोंमें ग्रथित करना चाहते हैं। उपासकों (मुनियों) की कामनापूर्त्यर्थ ब्रह्मको अनेक रूप बनाने पड़ते हैं, इसीसे भयातुर नमस्कार करनेमें ब्रह्माजीने इन्हींका नाम प्रथम लिया है—*'मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत'''*'। [विचार करनेमें देवताओंका ही नाम दिया—*'बैठे सुर सब करहिं बिचारा'।* मुनियोंका नाम न दिया। कारण यह भी हो सकता है कि भक्त संकट पड़नेपर भी प्रभुको कष्ट नहीं देना चाहते, कर्मभोग आदि समझकर कष्ट सहते हैं। 'सुर' स्वार्थी होते हैं। इसीसे सुर ही यहाँ अगुआ बने, मुनि केवल साथ हो लिये हों! प्रणाम करनेमें वे पहले हुआ ही चाहें क्योंकि उपासक हैं]।

प० प० प्र०—ये मुनि पृथ्वीतलपर रहनेवाले मुनि नहीं हैं, क्योंकि यहाँके मुनि ब्रह्मलोक और शिवलोक नहीं जाते। महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोकमें जो मुनि निवास करते हैं वे ही देवोंके विनयानुसार उनके साथ होते गये। स्वर्गलोकसे देव निकले और सत्यलोकको गये जहाँ *'जेहिं लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनि बृंदा। निसिबासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं'।* ऐसे मुनि ही यहाँ विवक्षित हैं। भगवान् न तो केवल ज्ञानी मुनियोंके लिये अवतार लेते हैं और न केवल देवताओंके लिये। वे० भू० जीके लेखमें प्रमाण दिये ही हैं।

नोट—इस आकाशवाणीमें प्रथम मुनियों और सिद्धोंको सम्बोधन किया है और अन्तमें देव-समुदायको। इसका कारण एक तो यह है कि ब्रह्माकी स्तुतिमें भी यही क्रम है—*'मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा'।* प्रथम मुनि और सिद्धका नाम है तब देवताओंका। इसीसे आकाशवाणीने आदिमें *'मुनि सिद्ध सुरेसा'* ('सुरेश' में ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तीनों आ गये) और अन्तमें *'देवसमुदाई'* शब्द देकर सबको कह दिया। दूसरा कारण (पंजाबीजीके मतानुसार) यह है कि मुनि और सिद्ध सदाके जितेन्द्रिय हैं, अतः उनके सम्मानहेतु उन्हें प्रथम कहा तब देवोंको।

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहौं दिनकर बंस उदारा॥ २॥

अर्थ—उदार सूर्यवंशमें अंशोंसमेत मैं 'मनुज' अवतार लूँगा॥ २॥

बाबा हरीदासजी—जैसे ब्रह्माजीने गुप्त विनय की वैसे ही गगनवाणीने गुप्त ही वचनोंमें कहा। जैसे विधिने असुरारी सम्बोधन किया वैसे ही वाणीने *'अंसन्ह सहित मनुज अवतार लेहौं।'* कहा अर्थात् असुरोंका नाशक मेरा सुदर्शनचक्र देह धरकर आवेगा, सो अंश शत्रुघ्नजी जानो। जो *'पालन सुर धरनी'* कहा था

उसकी जोड़में सब जगत्‌के पालनकर्ता विष्णुजी देह धरकर आवेंगे, सो अंश भरतजी जानो। और जो विधिने कहा कि *'भव भयभंजन···सरन सकल सुरयूथा'* अर्थात् अपने सयानपनसे आपका गुणगान करना भूल गये, अब आप अवतार लेकर चरित करें, जिसे गाकर हम भवपार हों, इसकी जोड़में वाणी कहती है कि सहसानन जो मेरा सदा गुणगान करते हैं वे अवतरेंगे, सो अंश लक्ष्मणजीको जानो।'

'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा···' इति।

बाबा जयरामदासजी रामायणी—'परम प्रभुके वे अंश कौन-कौनसे हैं जिनके सहित सरकारका अवतार हुआ?

जिन परम प्रभुकी प्राप्तिके हेतु श्रीस्वायम्भुव मनु तपस्या कर रहे थे, उन ध्येय तथा इष्टका स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—*'उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥'*···*'संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥'*—भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और शिव ये ही अंशस्वरूप कथित हैं, आगे चलकर *'बिधि हरिहर बंदित पद रेनू'* कहकर श्रीपरमप्रभुको इन तीनोंका अंशी लक्ष्य कराया गया है। श्रीरामावतार तीनों अंशोंसमेत चतुर्विग्रहमें प्रकट भी हुआ, यह प्रमाणित है। श्रीरामजी, श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी तथा शत्रुघ्नजी चारों भ्राताओंके रूपमें प्रादुर्भाव हुए। *'बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी'।* परंतु कौन विग्रह किस अंशसे हुआ, इसका स्पष्ट निर्णय नामकरणके समय गुरु श्रीवशिष्ठजीके द्वारा किया गया है। '···*बिस्व भरनपोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥'* जो संसारका भरण-पोषण (पालन) करनेवाले विष्णुभगवान् हैं, इनका नाम भरत है। *'जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥'*, अर्थात् जो वेदका प्रकाश करनेवाले ब्रह्माजी हैं, जिनके स्मरणसे शत्रुओंका हनन हो जाता है, इनका नाम शत्रुहन है। ब्रह्माके चारों मुखोंसे वेदोंका प्रकाश हुआ है। इसके अतिरिक्त मंथराके इस कथनपर कि *'कहौं झूठ फुर बात बनाई। तौ बिधि देइहि मोहि सजाई॥'* ब्रह्माके अंश शत्रुहनजीने ही उसे दण्ड दिया—*'हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भरि महि करत पुकारा॥'* अतः इससे भी शत्रुहनजीका ब्रह्माका अंश होना सिद्ध है। *'लच्छन धाम रामप्रिय सकल जगत आधार। गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥'*—जो शुभ लक्षणोंके धाम रामजीके प्रिय शिवजी हैं,—एकादश रुद्रोंमें प्रधान रुद्र और सकल जगत्‌के आधार शेषजी हैं—उन शिवजीके अंशस्वरूप जो यह चौथे हैं उनका उदार नाम लक्ष्मण है। जीवके वास्तविक लक्ष्य भगवान् श्रीराम ही हैं। उस लक्ष्यको यथार्थतः श्रीशिवजीने धारण किया है, यथा—*'जेहि सुख लागि पुरारि असिव बेष कृत सिव सुखद।'* (७। ८८) अतएव शिवजी *'लच्छनधाम'* हैं। पुनः उनके समान कोई रामप्रिय भी नहीं,—*'कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे।'*

इस प्रकार परमप्रभुके अवतार श्रीरघुनाथजी हैं और त्रिदेवगत श्रीविष्णुभगवान्‌के अवतार श्रीभरतजी, श्रीब्रह्माजीके अवतार श्रीशत्रुहनजी तथा श्रीशिवजीके अवतार श्रीलक्ष्मणजी हैं, अतएव सबके एकमात्र अंशी साक्षात् परमप्रभुने अपने तीनों अंशों—त्रिदेवोंसहित अवतार लेकर यह वाक्य सिद्ध कर दिया कि *'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहौं दिनकर बंस उदारा॥'*

नोट—१ उपर्युक्त मीमांसामें कुछ शंकाएँ और अड़चनें पैदा होती हैं। वे ये हैं—१ *'जासु अंस तें'* मूलपाठ है, जिसका अर्थ है कि 'जिसके अंशसे ब्रह्मादि उत्पन्न होते हैं न कि ये जिसके अंश हैं। अतः फिर भी यह प्रश्न खुला रह जाता है कि वह अंश कौन हैं जिनसे ब्रह्मादिक उत्पन्न होते हैं? २—गगनब्रह्मवाणी ब्रह्मा—शिवादिसे ही कह रही है कि *'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहौं दिनकर बंस उदारा॥'*, तो यह सिद्ध ही है कि ब्रह्मके अंश, जिसका वाणीमें संकेत है, सम्मुख खड़े हुए ब्रह्माशिवादिमेंसे कोई भी नहीं है वरंच इनसे अतिरिक्त कोई और ही हैं। ३—ब्रह्माजीका जाम्बवान् होना और शिवजीका हनुमान् होना गोस्वामीजीका मत है जैसा कि दोहावलीमें उन्होंने स्पष्ट कहा है, यथा—*'जानि रामसेवा सरस समुझि करब अनुमान। पुरुखा ते सेवक भये हर ते भे हनुमान॥'* (१४३) आकाशवाणी सुनकर ब्रह्माने सबको आज्ञा दी कि वानररूप धरकर *'हरिपद सेवहु जाइ'* और स्वयं जाम्बवान्‌रूपसे अवतरे। ४—गुरु श्रीवसिष्ठजी

चारों भाइयोंको वेदतत्त्व कहते हैं, यह उपर्युक्त लेखमें स्वयं कहा गया है, पर ब्रह्मा, विष्णु, महेशको कहीं भी वेदतत्त्व नहीं कहा या सुना गया है, तब ब्रह्मादिके अंशको श्रीवसिष्ठजी क्योंकर वेदतत्त्व कहते? ५—पाँचवें, ऊपर परम प्रभुके अंश ब्रह्मादि बताये गये और ब्रह्मादिके अंश शत्रुघ्नादि बताये गये, इससे जाना गया कि भरतादि भ्राता भगवान्‌के अंशावतार न होकर त्रिदेवके अंशावतार हैं। इत्यादि कारणोंसे त्रिदेवको आकाशवाणीमें संकेत किये गये अंश नहीं माना जा सकता।

वेदान्तभूषणजी कहते हैं कि नारदपाञ्चरात्रमें वैकुण्ठाधीशका भरतरूपसे, क्षीरशायी श्रीमन्नारायणका लक्ष्मणरूपसे तथा भूमापुरुषका शत्रुघ्नरूपसे श्रीरामसेवार्थ अवतीर्ण होनेका उल्लेख है। यथा—'**वैकुण्ठेशस्तु भरतः क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः। शत्रुघ्नश्च स्वयम्भूमा रामसेवार्थमागताः॥**' वैकुण्ठाधीश श्रीनारायण श्रीरामजीके अंश हैं। यथा—'**नारायणोऽपि रामांशः शङ्खचक्रगदाधरः।**' इति (बाराहपुराणे) शेषशायी श्रीमन्नारायणको परात्पर ब्रह्मका षोडशकलायुक्त विराट् पुरुष कहा है। यथा—'**जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः। सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया॥**'……**पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम्**''॥' (भा० १। ३। १—४) अष्टभुजी भौमापुरुष भी श्रीरामजीके अंश हैं। यथा—'**तस्मिन् साकेतलोके विधिहरहरिभिः संततं सेव्यमाने दिव्ये सिंहासने स्वे जनकतनया राघवः शोभमाने। युक्तो मत्स्यैरनेकैः करिभिरपि तथा नारसिंहैरनन्तैः कूर्मैः श्रीनन्दनन्दैर्हैमगलहरिभिर्नित्यमाज्ञोन्मुखैश्च॥ यज्ञः केशववामनौ नरवरो नारायणो धर्मजः श्रीकृष्णो हलधृक् तथा मधुरिपुः श्रीवासुदेवोऽपरः। एतेनैकविधा महेन्द्रविधयो दुर्गादयः कोटिशः श्रीरामस्य पुरो निदेशसुमुखा नित्यास्तदीये पदे॥** (बृहद्ब्रह्मसंहिता) '**स्थूलं चाष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्। परं च द्विभुजं रूपं तस्मादेतत्त्रयं यजेत्॥**' ' (आनन्द-सं०) इत्यादि।

अब यह देखना है कि इन तीनोंसे अगणित त्रिदेव उत्पन्न होते हैं। वैकुण्ठाधीशसे उत्पन्न होनेके प्रमाण, यथा—'**वैकुण्ठः साकारो नारायणः, तेष्वण्डेषु सर्वेष्वेकैकनारायणावतारो जायते, नारायणाद्धिरण्यगर्भो जायते, नारायणादेकादशरुद्रा जायन्ते।**' (ना० उ० ३। २) क्षीरसिन्धुनिवासीसे अनेक त्रिदेवादि और फिर उनसे देव-तिर्यक् और नरादिकी सृष्टिका प्रमाण, यथा—'**एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्। यस्यांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः॥**' (भा० १। ३। ५) (वे० भू० जी कहते हैं कि श्लोकके पूर्वार्धमें नाना त्रिदेवकी उत्पत्ति कहकर उत्तरार्धमें त्रिदेवादिसे देव-तिर्यक् आदिकी सृष्टि कही है।)

श्वेतद्वीपनिवासीसे अनेक अवतार होनेका प्रमाण भूमापुरुषके '**कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे।**'(भा० १०। ८९। ५९) इस वाक्यमें मिलता है। वे भगवान् कृष्णसे कहते हैं कि तुम और अर्जुन दोनों हमारी कलासे अवतीर्ण हो। (गी० प्रे० गुटकामें यह श्लोक नहीं है) (त्रिदेवोंकी उत्पत्तिका स्पष्ट प्रमाण उनके लेखमें नहीं है।)

प्राचीन ग्रन्थोंसे स्पष्ट प्रमाणोंके रहते हुए कि क्षीरशायी लक्ष्मण और भूमापुरुष शत्रुघ्न होते हैं, ब्रह्माजीका शत्रुघ्न और शिवजीका लक्ष्मण होना माना नहीं जा सकता।

'*जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥*' के '*बेद प्रकासा*' का अर्थ जो वेदका प्रकाश करनेवाले हैं, ऐसा अर्थ खींचतान है। '*तौ बिधि देइहि मोहि सजाई*' यह एक लौकिक वाक्यप्रथा है कि अमुक कर्मका फल विधि, दैव अथवा ईशादि देंगे। ☞दूसरे शत्रुघ्नजीके लिये कहा गया है कि उनके स्मरणसे शत्रुका नाश होता है। जीवके प्रबल शत्रु मोह-मनोजादि हैं और ब्रह्मादि स्वयं इनके वशमें हो जाते हैं। यथा—'*मन महुँ करै बिचार बिधाता।*''*जेहि बहु बार नचावा मोहीं॥*' ब्रह्माके स्मरणसे शत्रुओंके नाशका निर्देश श्रुतिस्मृतिमें नहीं सुना जाता। लक्ष्मणजी शिवावतार होते तो शिवजीका निरादर वे कदापि अपने वाक्योंसे न करते। '*अब आनिय ब्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥*', '*जौं सत संकर करैं सहाई। तदपि हतउँ रन राम दुहाई॥*' इत्यादि कभी न कहते।

कुछ लोग शङ्ख, चक्र और शेषका भरतादि होना कहते हैं, परन्तु मानसमें शङ्खादिके अवतीर्ण होनेकी सांकेतिक चर्चा भी न होनेसे इस विषयमें विचार उठाना व्यर्थ है। (संकीर्तन-अवताराङ्कमेंसे) ब्रह्माका विष्णु,

नारायण, भूमापुरुष आदि भगवद्रूपोंसे तत्त्वतः, गुणतः अभेद होनेसे उन्हींका चार भ्रातारूपसे अवतीर्ण होना विशेष सङ्गत जान पड़ता है।

श्रीबैजनाथजीका मत है कि श्रीसाकेतमें प्रभुके अंश जो श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्नजी हैं उन्हीं भाइयोंसहित प्रभु अवतार लेनेको कहते हैं। यह भी सुसङ्गत है।

प० प० प्र०—१ जब भगवान् स्वयं अवतीर्ण होते हैं, जैसे उमा-शम्भु-संवाद-कथामें तब क्षीरसागरनिवासी नारायण लक्ष्मण होते हैं। विष्णु भरत होते हैं और महेश शत्रुघ्न होते हैं। इस कल्पमें शेषावतार लक्ष्मण माना जाय तो मानसवचनोंसे विरोध होता है। शेषजी ब्रह्मावतार शत्रुघ्नको और विष्णु-अवतार भरतको कैसे मार सकेंगे? मानसके लक्ष्मणने रामरिपु भरत-शत्रुघ्नको मारनेकी प्रतिज्ञा की है। भगवान् शेषशायी ब्रह्मा-विष्णुसे श्रेष्ठ हैं, अतः ऐसी प्रतिज्ञा कर सकते हैं। धनुर्भङ्गके समय लक्ष्मणजीने *'कमठ अहि कोला'* को आज्ञा दी है, शेषशायी ही कमठ, वराह, शेषको आज्ञा दे सकते हैं।

२ मानसमें ही लक्ष्मणजीको शेषावतार भी कहा है। वह इस प्रकार है—जब शेषशायी नारायण अथवा विष्णु राम होते हैं तब शेषजी लक्ष्मण, शङ्ख भरत और चक्र शत्रुघ्न होते हैं। प० पु० तथा स्कन्दपु० में विष्णु, शेष, शङ्ख और चक्रका राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न होना कहा गया है। प० पु० में वृन्दाका शाप शेषशायी और शेष दोनोंको है, वनवास दुःख और कपि-साहाय्यका शाप भी वृन्दाने दिया है। शङ्खका भरत होना मानसमें गूढ़ भाषामें सूचित किया है। *'बिस्व भरन पोषन कर जोई'* अर्थात् विष्णु भरणपोषणकर्ताके करमें जो है वह भरत है। करमें शङ्ख है ही। इसी तरह सुदर्शनचक्रके स्मरणसे शत्रुका नाश होता ही है, अतः चक्र शत्रुघ्न हुए।

वि० त्रि०—*'अंसन्ह सहित'* भाव कि मैं (तुरीयका विभु) अपने अंशों (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिके विभुओं) के सहित मनुष्य-अवतार लूँगा। अर्थात् जब अंशीका अवतार होगा तब अंश भी आवेंगे। राजाके साथ सारा समाज चलता है। सुषुप्तिके प्रभु ईश्वर, स्वप्नके हिरण्यगर्भ और जाग्रत्‌के विभु विराट् हैं। इन्हींके साथ अवतीर्ण होनेका आश्वासन दिया जा रहा है।

नोट—२ पूर्व कहा जा चुका है कि मानसमें मुख्यतः परात्पर परब्रह्म श्रीरामजीका ही अवतार और चरित कहा गया है, परन्तु 'श्रीरामावतार' का हेतु कहनेमें वैकुण्ठ और क्षीरशायीको शापका दिया जाना और उन शापोंके व्याजसे भी श्रीरामावतारका होना कहा गया है। इसीसे उन तीन कल्पोंकी कथा भी गौणरूपसे मानसकल्पकी कथामें जहाँ-तहाँ ग्रथित है। इसके अगणित प्रमाण ग्रन्थभरमें हैं जैसे स्तुतिमें चार कल्पोंके अवतारोंकी स्तुतिका विवरण है वैसे ही आकाशवाणीमें भी चार कल्पोंके अवतारोंका प्रसङ्ग सूक्ष्म रीतिसे है।

नोट—३ (क) भगवान्‌ने जो मनुजीसे कहा है कि *'अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता॥'* उसीको वहाँ *'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।' 'लेहौं'* कहकर चरितार्थ किया है। *'मनुज'* शब्दमें श्लेषद्वारा यह ध्वनि भरी हुई है कि मनुको जो हमने वर दिया है उसे सत्य करेंगे, उनके पुत्र होंगे। (ख) *'लेहौं दिनकर बंस उदारा'* इस वाक्यसे पूर्वके (मनु-शतरूपाजीसे कहे हुए) *'इच्छामय नरबेष सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे॥' 'होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत।'* इन वाक्योंको चरितार्थ किया। ☞इस प्रकार इस वाणीमें 'मनु प्रार्थित' रामावतारवाले कल्पका प्रसङ्ग है। (ग) *'बंस उदारा'* इति। इस वंशमें समस्त राजा चक्रवर्ती और उदार दानी होते आये हैं। यथा— *'मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं।'* उदारसे श्रेष्ठ और महान् भी जनाया। रघुवंशी बड़े वीर और प्रतापी हुए हैं। यथा—*'जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी।', 'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥'* (२८४। ४) इस कुलमें अवतार लेनेसे अवतार गुप्त रहेगा। अतः कहा कि इस कुलमें अवतार लूँगा। बैजनाथजी लिखते हैं कि *'बंस उदारा'* में अवतारका भाव यह है कि उस कुलमें प्रकट होकर विशेष उदारता प्रकट करूँगा। देशकाल पात्रापात्रका विचार न करके स्वार्थरहित याचकमात्रको मनोवाञ्छित दान दूँगा। यथा—*'सुसमय सब के द्वार द्वै निसान बाजै। कुसमय तैं दसरथ के दानि गरीब निवाजै।'* (विनय०)

वि० त्रि०-उदार सूर्यवंशमें अवतार ग्रहण करनेका अभिप्राय यह है कि बारह कलाओंमें ही पूर्णता हो जायगी, क्योंकि सूर्यमें बारह कलाएँ हैं। चन्द्रवंशमें अवतार ग्रहण करनेसे सोलह कलाओंमें पूर्णता होती है। क्योंकि चन्द्रमें सोलह कलाएँ हैं।

कस्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥ ३॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा॥ ४॥
तिन्ह कें गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥ ५॥

अर्थ—कश्यप और अदितिने बड़ा भारी तप किया था। मैंने उनको पूर्व ही वर दिया था॥ ३॥ वे दशरथ-कौसल्यारूपमें श्रीअयोध्यापुरीमें नृपति होकर प्रकट हुए हैं॥ ४॥ मैं उनके घरमें जाकर रघुकुलमें शिरोमणि चारों भाईके रूपमें अवतार लूँगा॥ ५॥

नोट—१ (क) *'कस्यप अदिति……'* इति। इससे जनाया कि महर्षि कश्यप और अदिति प्राय: दशरथ और कौसल्या होते हैं अथवा चार कल्पोंके श्रीरामावतारका हेतु कहा गया है; उनमेंसे तीनमें कश्यप-अदिति ही दशरथ-कौसल्या हुए। उनके यहाँ अवतार होना सब जानते हैं, यथा—*'कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥'* (१२३। ३) जय-विजय-कल्पके प्रसङ्गमें शिवजीने *'बिख्याता'* शब्द कहकर जना दिया कि कश्यप-अदितिजीका दशरथ-कौशल्या होना सब देवता जानते हैं। मनु-शतरूपाका दशरथ-कौशल्या होना सब नहीं जानते। (ख) *'प्रगट नरभूपा'* से जनाया कि तुम सब यह बात जानते हो। (ग) *'तिन्ह के गृह अवतरिहौं जाई'* इति। *'जाई'* से जनाया कि हम शीघ्र ही अवतार लेंगे क्योंकि कश्यपादि दशरथादि रूपसे प्रकट हो चुके हैं। (घ) *'रघुकुल तिलक'* इति। प्रथम *'दिनकर बंस'* कहा और अब रघुकुल कहा। भाव कि इस कुलमें 'रघु' जी ऐसे प्रतापी, तेजस्वी और उदार हुए कि 'दिनकरवंशका नाम बदलकर लोग उसे 'रघुकुल' कहने लगे। रघुसे लेकर अनेक राजा इस कुलमें हो गये जिनसे रावण शङ्कित रहता था। अत: इस कुलमें प्रकट होनेसे रावणको इनके मनुष्य होनेमें कभी सन्देह न होगा। (ङ) *'सो चारिउ भाई'* से श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी चारों भाइयोंका अवतार कहा।

नोट—२ श्रीबैजनाथजी तथा पं० रामवल्लभाशरणजी आदिका मत है कि इन चरणोंमें जलंधर और जय-विजयवाले कल्पोंका प्रसङ्ग है। इनके लिये वैकुण्ठसे अवतार हुआ था। इन कल्पोंके सम्बन्धमें पूर्व जो कहा था कि *'कस्यप अदिति तहाँ पितु माता।……'* (१२३। ३) उसीको यहाँ *'कस्यप अदिति……नरभूपा।'* इस वाक्यसे चरितार्थ किया।

नोट—३ वेदान्तभूषणजीका मत है कि रावणकी तरह दशरथ भी कोई हों किन्तु श्रीअयोध्याजीमें साकेतविहारी ही अवतीर्ण होते हैं। इसपर शङ्का हो सकती है कि 'मनुको वर दिया गया तब यहाँ कश्यपका दशरथ होना क्यों कहा?' समाधान यह है कि—(क) मनु और कश्यप दोनों प्रजापति हैं, दोनोंसे सृष्टिका विस्तार होता है। दोनोंकी एक क्रिया होनेसे दोनोंमें अभेद दिखाया। (ख) किशोररामायणमें लिखा है कि *'मारीचो कश्यपो नाम मनुश्चापरजन्मनि।'* (१। ३। १८) अर्थात् मरीचि मुनिके पुत्र कश्यप ही दूसरे जन्ममें मनु हुए। उसीमें आगे चलकर यह लिखा है कि श्रीरामजीका अर्चन करके जो कश्यप भगवान्‌के पिता हुए। (वामनावतार उन्हींके द्वारा हुआ था) वही इस समय (दूसरे जन्ममें) मनु और (तीसरे जन्ममें) नृप होंगे तब परात्पर श्रीराम उनके पुत्र होंगे। यथा—'**समर्चनं यस्य विधाय कश्यपो ह्यदित्या सार्धमवाप पितृताम्। रामस्य एवात्र भवे मनौ नृपे ह्यवाप्नुयात्पुत्रतनुं परात्पर:॥**' (१। ५। १२) इसीसे कश्यपका महातप करना कहा। क्योंकि वे ही मनु और दशरथ हुए।

वृन्दाके शापवाले कल्पमें कश्यप अदिति माता-पिता नहीं हुए थे। आ० रा० में धर्मदत्तका दशरथ होना कहा है।

कहाँ तो मनुसे कहा कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा और यहाँ देवताओंसे कहते हैं कि कश्यप दशरथ हुए हैं; उनके यहाँ जन्म लूँगा, इस द्विवाक्यतामें भाव यह है कि जिन कल्पोंमें मैं स्ववाचाबद्ध होनेसे प्रकट होता हूँ, उनमें मनु वा कश्यप ही दशरथ होते हैं और जिनमें मुझे अपने अंश वैकुण्ठ, क्षीरशायी आदिके बदलेमें दाशरथि होना पड़ता है उनमें धर्मदत्त आदि दशरथ होते हैं। मानसमें धर्मदत्तादिका नाम इससे नहीं दिया गया कि इसमें उन शापवाले कल्पोंकी कथा नहीं कहना है। [श्रीहरिदासाचार्यजी (श्रीरामतापनीयोपनिषदादिके भाष्यकार) का यही मत है जो उन्होंने विस्तारसे भाष्यमें लिखा है।]

वि० त्रि०—*'कस्यप अदिति''''चारिउ भाई'* इति। *'जनि डरपहु''''''''बंस उदारा'* यह आकाशवाणी उस कल्पकी है जिसमें स्वायम्भू मनु और शतरूपाकी प्रार्थनासे ब्रह्मका रामावतार हुआ था और भानुप्रतापका रावणावतार हुआ था। जय-विजयके रावण होनेके प्रकरणमें कहा था कि *'कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥'* वही बात आकाशवाणी अब कह रही है कि *'कस्यप अदिति महातप कीन्हा''''ते दसरथ कौसल्या रूपा। कौसलपुरी प्रकट नरभूपा॥'* उन्हींके घर हम चार भाई होकर अवतार ग्रहण करेंगे। भाव कि देवताका आयुध-वाहन आदि उनके स्वरूपसे पृथक् नहीं होता। इस अवतारमें शेष भगवान् लक्ष्मण हुए, पाञ्चजन्य शङ्ख भरत और सुदर्शनचक्र शत्रुघ्न हुए। वैकुण्ठनाथका रामावतार हुआ। यह जय-विजय रावण-कुम्भकर्णवाले कल्पकी आकाशवाणी है।

प० प० प्र०—आकाशवाणीमें कश्यप-अदितिके दशरथ-कौसल्या होनेका उल्लेख है, मनु-शतरूपाके दशरथ-कौसल्या होनेका उल्लेख क्यों नहीं है? समाधान—पहले बताया जा चुका है कि १८६ छन्द १ नारायणावतारविषयक है, १८६ छन्द, २, ३ सगुण ब्रह्म-विषयक हैं और छन्द ४ विष्णुविषयक है। नारायण, सगुण-ब्रह्म द्विभुज (जिनका दर्शन मनु-शतरूपाको हुआ था) और विष्णु यह क्रमस्तुतिमें है। इसका उलटा क्रम आकाशवाणीमें है। यथा—(१) *'तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेषा'* कहनेवाले विष्णु नर वेषधारी नहीं हैं, वे चतुर्भुज हैं, इससे उन्होंने कहा कि नरवेष धारण करूँगा। (२) *'अंसन्ह सहित,* देहलीदीपक है। *'मनुज अवतार लेहउँ'* का मनुज श्लेष है। यह संकेत (मनु-जात और मनुष्य) सगुणब्रह्मावतार-विषयक है। मनुजीको जब दर्शन दिया तब नररूप (द्विभुज) ही थे और साकेतनिवासी रामका नररूप ही है; अतः वहाँ *'नरबेष लेहउँ '* कहनेकी आवश्यकता नहीं है। गगनगिरा गम्भीर है, अति गूढ़ है। अतः यही अति गूढ़ वचन है। (३) *'कस्यप अदिति महातप कीन्हा'*—यह शेष दो कल्पोंकी कथासे सम्बन्धित है। एकमें वृन्दाशाप और दूसरेमें नारदमोह कारण है। दोनोंमें कश्यप-अदिति दशरथ-कौसल्या हैं। प्रथम जलंधर-रावण-कल्पका उल्लेख किया, अन्तमें नारदशापवालेका, क्योंकि मानसमूलमें वही कथा प्रथम है, वह कथा चारों कल्पोंके लिये सामान्य है और प्रत्येक वक्ताने अपने कल्पकी कथाको विशेष मिलाया है। इस प्रकार अर्थ करनेसे उलझन, शङ्का और मतभेदके लिये स्थान ही नहीं है। जिस अवतारके जन्मकी कथा शिवजी कह रहे हैं, वह अवतार सगुण ब्रह्मका ही है और १। ४९। १ में भी मनुज शब्द है—*'रावन मरन मनुज कर जाचा',* यहाँ भी *'मनुज अवतारा'* कहा है और दोहा १९२ में भी *'लीन्ह मनुज अवतार'* कहा है। चारों कल्पोंका समन्वय करनेके लिये ही १९२ छन्द १ में *'निज आयुध भुज चारी'* ऐसे गूढ़ शब्द रखे गये हैं।

जय-विजयके लिये जो विष्णुका रामावतार हुआ उसमें कश्यप-अदितिके दशरथ-कौसल्या होनेका उल्लेख १। १२३। ३ में कर आये हैं, अतः यहाँ स्पष्ट नहीं कहा। वहाँ अवतारहेतुकथनमें भी विष्णु-अवतारका प्रथम उल्लेख है, वैसे ही यहाँ है। भेद इतना है कि मनुजीको कथा विस्तारसे कथन करनेके बाद यह उल्लेख (आकाशवाणी) है। अतः केवल *'मनुज'* शब्दसे संकेत कर दिया गया। शेष विस्तार वही है।

नारद बचन सत्य सब करिहौं। परम सक्ति समेत अवतरिहौं॥ ६॥
हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥ ७॥

अर्थ—नारदका सब वचन सत्य करूँगा। परम (आद्या) शक्तिसहित अवतार लूँगा॥ ६॥ मैं पृथ्वीका सब भार हरूँगा। हे देववृन्द! निडर हो जाओ॥ ७॥

टिप्पणी—१ *'नारद बचन सत्य सब करिहौं'''''।* (क) इससे सूचित हुआ कि नारद कल्पमें भी कश्यप और अदिति ही पिता-माता हुए। [*'सब बचन'* कहा क्योंकि उनके शापमें कई बातें हैं। यथा—(क) *'बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा' 'सोइ तनु धरहु',* राजा बनकर ठगा अतः राजा बनकर यह वचन सत्य करेंगे। (२) *'करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी',* अतः वानरोंसे सहायता लेंगे। (३) *'मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह।'* राजा बनकर स्त्रीसे वियोग कराकर विरही बनाया। अतः रावण यती बनेगा और उसके द्वारा हम अपनी स्त्रीके हरण किये जानेकी लीला भी करेंगे। विरही भी बनेंगे। (४) *'नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी।'* अतः विरही बनकर यह भी चरित करेंगे।] (ख) *'परम सक्ति समेत अवतरिहौं'* इति। *'नारि बिरह'* से दुःखी होनेका शाप दिया है इसीसे आकाशवाणी कहती है कि परम शक्तिके साथ अवतार लूँगा। [भाव यह कि मेरी परम 'शक्ति' ही मेरी स्त्री होगी, दूसरी कोई नहीं। परम, परा, आद्या ये सब एक ही हैं। उमानन्दनाथजीने एक तांत्रिक ग्रन्थमें पराशक्तिका वर्णन इस प्रकार किया है—**'यस्यादृष्टो नैव भूमण्डलांशो यस्या दासो विद्यते न क्षितीशः। यस्याज्ञातं नैव शास्त्रं किमन्यैः यस्याकारः सा पराशक्तिरेव॥'** अर्थात् 'परम शक्ति' वह शक्ति है जिसके लिये संसारका कोई भी अदृष्ट नहीं है। कोई ऐसा राजा नहीं जो उसका गुलाम न हो। कोई ऐसा शास्त्र नहीं जिसे वह न जानती हो। पुनः, परम शक्ति=समस्त शक्तियोंका मूल स्रोत। (ग) मनुजीसे जो प्रभुने कहा था कि *'आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि'* वह भी *'परम सक्तिसमेत अवतरिहौं'* से चरितार्थ किया गया। 'परम' और 'आदि' एक ही बात है। ये उनकी साक्षात्स्वरूपा शक्ति हैं।]

प० प० प्र०—*'नारद बचन सत्य सब करिहौं।'* इति। पहले कहा था कि *'नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥'* यह शाप एक कल्पमें अवतारके लिये ही था। पर यहाँ शाप न कहकर *'नारद बचन'* कहनेमें भाव यह है कि जिस कल्पमें किसी दूसरेका शाप कारण नहीं होता है, उसमें नारद-वचन ही सत्य किया जाता है। अद्भुत करनी है। अपने भक्तका प्रेम इतना है।

नोट—१ बैजनाथजीका मत है कि *'नारद बचन'''''* यह आकाशवाणी हरगण-रावणके समयके क्षीरशायी भगवान्‌का वाक्य है। उन्हींको शाप हुआ था। यही मत पं० रा० व० श० जीका है।

नोट—२ पं० रा० व० श०—अवतार तीनों स्थानोंसे होता है। अतएव आकाशवाणीमें तीनोंका समावेश है। 'अवतार' शब्द तीन बार आया है। तीन क्रियाएँ पृथक्-पृथक् तीनों अवतारोंकी कथा सूचित करती हैं।

नोट—३ वे० भू० रा० कु० दास—जो यह कहते हैं कि नारदशापके कल्पमें कश्यप दशरथ हुए थे उन्हें अद्भुत रामायण पढ़ लेना चाहिये। उसमें स्पष्ट लिखा है कि नारदशापकल्पमें अम्बरीष दशरथ हुए थे। (अद्भुत रा० ४। ६०)

टिप्पणी—२ *'हरिहौं सकल भूमि गरुआई''''''* इति। (क) ये आकाशवाणीके अन्तिम वचन हैं। आदिमें *'जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा'''''* कहा है। ब्रह्माजीने कहा था कि सब परम भयातुर हैं, सुरयूथ आपकी शरण हैं, इसीसे ब्रह्मवाणीने आदि और अन्त दोनोंमें *'निर्भय'* होनेको कहकर उनका आश्वासन किया। [*'गरुआई'* अर्थात् भार। पृथ्वी व्याकुल होकर मनमें विचारती थी कि *'गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥'* (१८४। ५) वही *'गुरुता',* वही भार हरण करनेकी प्रतिज्ञा यहाँ है। पुनः, ब्रह्माजीने जो *'गो द्विज हितकारी जय असुरारी'* कहा था उसके सम्बन्धसे यहाँ *'हरिहौं'''''* कहा। अर्थात् पृथ्वीरूपी गौ, ब्राह्मणों और सुरोंका हित करूँगा। किस तरह? *'गरुआई'* हरकर। राक्षस पृथ्वीका

भार हैं, उनका वध करके सबका हित करेंगे। ब्रह्मस्तुतिके *'सकल सुरयूथा'* की जोड़में यहाँ *'देव समुदाई'* है। *'सकल गरुआई'* से जनाया कि पृथ्वीभरके निशाचरोंका नाश करूँगा।]

मनुप्रकरण तथा नारदवचनसे इस आकाशवाणीका मिलान

	मनु-प्रकरण	आकाशवाणी
	अंसन्ह सहित देह धरि ताता	*१ अंसन्ह सहित मनुज अवतारा*
	इच्छामय नर बेष सँवारे	*२ मनुज अवतारा*
	होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे	*३ लेहौं दिनकर बंस उदारा*
नारदवचनसे मिलान	(क) *बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तन धरहु श्राप मम एहा॥*	☞*अंसन्ह सहित मनुज अवतारा लेहौं दिनकर बंस उदारा।*
	(ख) *कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥*…	☞इन बातोंके कहनेका कोई प्रयोजनन न था। अतः आकाशवाणीने इसपर कुछ न कहा। नारदकल्पकी बात ब्रह्माको मालूम है, इसीसे वे देवताओंसे कहते हैं कि *'बानर तनु धरि धरि महि हरिपद सेवहु जाइ।'*
	(ग) *नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी*	—यहाँ इनके कथनका कोई प्रयोजन नहीं था।
	आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोहि यह माया॥	४ *'परम सक्ति समेत अवतरिहौं'* इसीमें *'नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी'* भी सिद्ध हो गया।

☞(परब्रह्मको जो करना है वही उन्होंने कहा। अन्य कल्पोंसे मिलान करके आकाशवाणीने देवताओंको निस्संदेह बोध कराया है।)

होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत	५ ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा॥

☞देवता कश्यप-अदितिके यहाँ ही अवतार जानते हैं। इसीसे यहाँ भी कश्यप-अदितिके यहाँ अवतार होना कहा। यथा—*'कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥'*, *'कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहँ मैं पूरब बर दीन्हा॥ ते दसरथ कौसल्या रूपा।'*

☞बिख्याताका भाव कि कश्यप-अदितिका दशरथ, कौसल्या होना विख्यात है, मनु-शतरूपाका दशरथ-कौसल्या होना विख्यात नहीं है।

गगन ब्रह्म बानी सुनि काना। तुरत फिरे* सुर हृदय जुड़ाना॥ ८॥

अर्थ—आकाशकी ब्रह्मवाणी कानोंसे सुनकर देवताओंके हृदय शीतल हो गये और वे तुरत लौट पड़े॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'गगन ब्रह्मबानी'* इति। ब्रह्माकी वाणीको भी ब्रह्मवाणी कहते हैं और परात्पर परब्रह्मकी वाणीको भी 'ब्रह्मवाणी' कहते हैं। पार्वतीजीके तपमें ब्रह्माकी वाणी है, यथा—*'देखि उमहि तपखीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥'* जो आकाशवाणी हुई वह ब्रह्मकी वाणी है (यह जतानेके लिये *'गगन ब्रह्म'* बानी शब्द यहाँ दिये)।

नोट—१ *'ब्रह्मबानी सुनि'''सुर हृदय जुड़ाना।'* आकाशवाणी देवताओंने कानोंसे सुनी। स्पष्ट सुन लिया कि भगवान् कहते हैं कि *'हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥'* अतः वे सन्तुष्ट हो गये। वाणीको शोक-सन्देहहारिणी कहा था, यथा—*'गगनगिरा गंभीर भै हरनि सोक संदेह।'* उसको यहाँ चरितार्थ करते हैं कि *'सुर हृदय जुड़ाना'*। *'हृदय जुड़ाना'* से सूचित किया कि पूर्व संतप्त थे; जैसा कि *'बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥'* *'सो करउ अघारी चिंत हमारी'* *'परम भयातुर*

* फिरेउ—१६६१।

नमत नाथ पदकंजा' तथा *'हरनि सोक संदेह'* से स्पष्ट है। शोकोत्पन्न सन्ताप जाता रहा; अतः हृदय शीतल हो गया।

'गगन ब्रह्मबाणी' इति।

आकाशवाणीके सम्बन्धकी शङ्का बड़ी जटिल है। जो कुछ पूर्व लिखा गया है उसीको समझनेके लिये मैं यहाँ उसे एकत्रित कर रहा हूँ। उससे सबके मत ठीकसे समझमें आ जायेंगे।

पं० शिवलालपाठकजीका मत है कि *'अपर हेतु सुनु सैलकुमारी।'* (१४१। १) से लेकर *'मोर बचन सबके मन माना।'''''।'* (१८५। ८) तक दिव्य परतमकल्पका चरित है। इस परतम प्रभुके अवतारकी स्तुति मनुद्वारा हो चुकी है। यहाँ शंकरजीने देवताओंसे कहा कि प्रेम करो, प्रभु प्रकट हो जायँगे। आगे ब्रह्मस्तुति *'जय जय सुरनायक'''* से लेकर*'यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहि राखा।'* (१८८। ६) तक नारद शापावतारका प्रसङ्ग है जो परतम-अवतार-कल्पके चरितको छोड़कर शिवजी कहने लगे थे क्योंकि प्राकृत सृष्टिके लोगोंको परतमके अवतारमें विश्वास न होगा।

दूसरा मत यह है कि मानसमें श्रीरामावतारके हेतु-कथनमें चार कल्पोंके रामावतारका हेतु कहा गया है। तीन कल्पोंमें संक्षेपसे कहा। अन्तमें अगुण-अरूप-अजादि विशेषणयुक्त ब्रह्मके अवतारका हेतु विस्तारसे कहा, क्योंकि इसीमें गरुड़जी और सतीजीको भ्रम हुआ था। मानसमें विस्तृतरूपसे परतम अवतारवाले कल्पकी ही कथा है, पर बीच-बीचमें अन्य तीन कल्पोंके प्रसङ्ग-सूचक शब्द देकर ग्रन्थकारने जना दिया है कि सब कल्पोंकी कथाएँ भी साथ-साथ इसमें ग्रथित हैं। इसीसे इस ब्रह्मस्तुतिमें चारों कल्पोंकी देवस्तुति और आकाशवाणीमें चारों कल्पोंकी आकाशवाणी है जैसा पूर्व दिखाया जा चुका है। यह मत श्रीबैजनाथजी, सन्त श्रीगुरुसहायलालजी आदि अनेक टीकाकारोंका है।

तीसरा मत यह है कि यह आकाशवाणी परतम प्रभुके अवतारकी ही है और ब्रह्मवाणी है। अन्य कल्पोंसे इसका सम्बन्ध नहीं। यह वाणी *'गंभीर'* और *'हरनि सोक संदेह'* है। गँभीर अर्थात् गूढ़ है, अगाध है। यहाँ तीन मत वा सिद्धान्तके लोग हैं, इसीसे इसमें ऐसे शब्द आये हैं जिससे तीनोंको सन्तोष हो, सभीका शोक-सन्देह निवृत्त हो। सभी अपनी-अपनी भावनाके अनुसार वैसा ही समझ लें और अपना (परतम प्रभुका) अवतार गुप्त भी रहे, केवल उसके अधिकारी श्रीशिवजी, भुशुण्डिजी, अगस्त्यजी आदि ही जानें। दोहेके *'हरनि सोक संदेह'* शब्द अभिप्रायगर्भित हैं। वाणी इस प्रकारकी न होती तो सबका समाधान न होता।

आकाशवाणीके वचन बड़ी युक्तिके हैं। जो उसने कहा वह सब सत्य है। *'कस्यप अदिति महातप कीन्हा', 'तिन्ह कहँ मैं पूरब बर दीन्हा', 'ते दसरथ कौसल्या रूपा'* और *'कोसलपुरी प्रगट नरभूपा'* ये सब वाक्य सत्य हैं। कश्यप-अदितिने तप किया था, उनको वर मिला था। उन्हींने मनु-शतरूपा होकर परतम प्रभुके लिये तप किया और वर पाया। (यह त्रिदेव ही जानते थे। क्योंकि इनसे उन्होंने वर नहीं माँगा। सुतराम् श्रीसीतारामजीने उन्हें स्वयं दर्शन देकर उनके मनोरथ पूर्ण किये।) वही कश्यप-मनु दशरथरूपसे प्रकट हुए हैं और अदिति-शतरूपा कौसल्या हुई हैं। अतः *'ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा॥'* भी सत्य है। मनु-शतरूपाके वरदानकी बात सब नहीं जानते और प्रभु अपने अवतारको गुप्त रखना चाहते हैं, अतः आकाशवाणीने मनु-शतरूपाको कश्यप-अदितिमें ही गुप्तरूपसे जना दिया। अधिकारी जान गये, अन्य नहीं।

आगे आकाशवाणी कहती है *'तिन्ह के गृह अवतरिहौं जाई'* यह भी सत्य है। दशरथजीका घर सदा वही है, श्रीअवध वही है, अनादि है। श्रीरामावतार सदा दशरथ-कौसल्याके यहाँ होता है। मनु-शरीर या कश्यप-शरीरमें वह अवतार नहीं होता। श्रीरामावतारके लिये श्रीअवध ही कश्यपका घर है, वही मनुका घर है और वही दशरथका है। इसीसे *'गृह'* शब्द बड़ी युक्तिका है।

अब *'नारद बचन सत्य सब करिहौं।…'* इसको लीजिये। यह भी सत्य है। नारदके वचन ये ही तो हैं कि तुम राजाका शरीर धारण करो, वानर तुम्हारे सहायक बनें, स्त्री-विरह-दुःख तुमको हो। कोई भी रामावतार ऐसा नहीं है जिसमें श्रीराम राजा न होते हों? सभीमें वे राजा होते हैं, सीता-हरण-लीला होती है, वे विरहीका नाट्य करते हैं और वानर ही सहायक होते हैं। यदि ये बातें नारद-शाप-कल्पके अतिरिक्त अन्य कल्पोंके अवतारोंमेंसे निकाल डालें तो फिर अन्य कल्पोंमें लीलाका कार्य ही न रह जायगा। न राम राजा होंगे, न सीता-हरण होगा, न रावण मारा जायगा और न कभी देवताओंका शोक-सन्ताप मिटेगा। नारद-शापका प्रसङ्ग एक ही अवतारमें समाप्त हो जाता है, पर नारद-वाक्य सभी रामावतारोंमें सत्य होते हैं। जो चरित्र प्रभु सदा रामावतार लेकर किया करते हैं, वही एक कल्पमें उन्होंने नारदके मुखसे शापमें भी कहलाये। अ० रा० में नारदवचनकी बात नहीं है फिर भी यह सब चरित्र हुए हैं।

रा० प्र० का मत है कि आकाशवाणीमें कल्पान्तरोंके सूचक शब्द देकर वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु, क्षीरशायी श्रीमन्नारायण और अपनेमें अभेद बताया। जैसे भृगुने लात मारी विष्णुको और भृगुलता धारण करते हैं सभी लीलावतार तथा वृन्दाका शाप हुआ विष्णुको, पर शालग्रामरूपमें चिह्नभेदसे क्षीरशायी श्रीमन्नारायण और श्रीरामादि सभी भगवत्-स्वरूप मिलते हैं। वैसे ही शाप होता है क्षीरशायीको और उसे धारण करते हैं सभी लीलाविग्रह—तत्त्वतः, गुणतः, स्वरूपतः भेद प्रदर्शित करनेके लिये। जैसे तीन कल्पोंके अवतारोंका हेतु कहते हुए बताया है कि उनमें कौन रावण हुआ, वैसे ही मनु-शतरूपाके प्रेमसे परतम प्रभु श्रीसीतारामजीके अवतारके लिये कौन रावण हुआ यह बतानेपर ही अगुण अरूप अज ब्रह्मके अवतारका हेतु समाप्त होता है। अतः बताया कि भानुप्रताप इसमें रावण हुआ। उसके अत्याचारसे देवता पीड़ित हो शरणमें गये। तब उनके शोक-सन्देह-हरणार्थ आकाशवाणी हुई। अतः इस *'गगन ब्रह्मबानी'* का उसी कल्पसे सम्बन्ध होना उचित ही है।

शापित अवतारोंमें प्रायः आकाशवाणी इस अवसरपर नहीं देखी-सुनी जाती, जैसा वाल्मीकीय, अध्यात्म आदि कतिपय ग्रन्थोंसे सिद्ध है। वहाँ वैकुण्ठवासी अथवा क्षीरशायी भगवान्से ब्रह्मादि देवता प्रार्थना करते हैं कि आप रावणको नरावतार लेकर मारें।

अतः यह मानना कि मनुको वरदान इस कल्पमें हुआ, पर उनके लिये अवतार इस कल्पमें नहीं हुआ किसी दूसरे कल्पमें होगा, कहाँतक ठीक हो सकता है पाठक स्वयं विचार कर लें। प्रभुका श्रीमुख-वाक्य है—*'तात गए कछु काल पुनि। होइहहु अवधभुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥'* तब भला मनु-शतरूपाजी कल्पान्तका वियोग कैसे सह सकेंगे?

नोट—२ ☞बाबा श्रीहरिदासाचार्यजीने श्रीरामतापनीय भाष्यमें श्रुति-स्मृति आदि प्रमाणोंसे यह सिद्धान्त किया है कि रामावतार सदा साकेतसे होता है। वैकुण्ठ या क्षीरशायी भगवान् राम नहीं होते। शालग्राम और बल्लौरी शीशे आदिके दृष्टान्तोंसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि भी की है। यही मत वेदान्तभूषणजीके लेखोंमें है। मानसके उद्धरणोंसे भी इसकी पुष्टि हो जाती है। जैसा अन्यत्र कहीं-कहीं दिखाया भी गया है।

☞मानसके प्रायः सभी टीकाकारोंने वैकुण्ठाधीश और क्षीरशायीका भी श्रीरामावतार लेना माना है। ग्रन्थोंमें देखा जाता है कि वैकुण्ठाधीश आदि देवताओंके सामने प्रकट हुए हैं और उनकी प्रार्थना सुनकर स्पष्ट कहा है कि मैं नर-शरीर धरकर रावणको मारूँगा। यदि वे श्रीरामावतार नहीं लेते तो उनका वाक्य असत्य ठहरेगा। मानसके *'पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई॥'* (२। १३९। ५) आदि वाक्योंसे इनके मतकी पुष्टि भी होती है।

नोट—३ (क) अंशोंके सम्बन्धमें भी मतभेद है। कोई-कोई वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चतुर्व्यूह अवतार मानते हैं। (मा० त० वि०) कोई शंख, शेष और सुदर्शनका क्रमशः श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण,

श्रीशत्रुघ्न होना मानते हैं, जब वैकुण्ठ या क्षीरसिंधुसे अवतार होता है। साकेतसे अवतार होनेपर श्रीभरतादि भाई जो वहाँ हैं वे ही यहाँ अवतीर्ण होते हैं। (वै०) और कोई यह मानते हैं कि अवतार सदा साकेतसे होता है और वैकुण्ठाधीश, विराट् तथा भूमापुरुष ही श्रीरामजीके अंश हैं जो श्रीभरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्नरूपसे श्रीरामसेवार्थ अवतीर्ण होते हैं। (वे० भू०)

(ख) अ० रा० में क्षीरशायी भगवान् विष्णुके वचन इस आकाशवाणीसे मिलते हैं, केवल '*नारद बचन सत्य सब करिहौं*' यह अंश उनमें नहीं है। यथा—'**कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे। याचितः पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृतं मया। स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले॥ तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने। चतुर्धात्मा नमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्॥ योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा॥**' (१। २। २५—२८)

नोट—४ श्रीरामचरितमानसमें बाल, अयोध्या और उत्तरकाण्डोंमें सब मिलकर नौ आकाशवाणियाँ हैं। क्रमसे यथा—

(१) *चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दिढ़ाई॥*
(२) *देखि उमहिं तप खीन सरीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा॥*
(३) *माँगु माँगु बर भइ नभ बानी। परम गँभीर कृपामृत सानी॥*
(४) *नृप सुनि साप बिकल अति त्रासा। भइ बहोरि बर गिरा अकासा॥*
बिप्रहु साप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
(५) *जानि समय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह। गगन गिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥*
(६) *जग भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबल बिपुल बखानी॥*
(७) *मंदिर माँझ भई नभ बानी। रे हतभाग्य अज्ञ अभिमानी॥*
(८) *बिप्रगिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभ बानी॥*
(९) *सुनि मुनि आसिष सुनु मति धीरा। ब्रह्म गिरा भै गगन गँभीरा॥ एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भक्त कर्म मन बानी॥*

अनुमान होता है कि इनमेंसे जो वाणियाँ परात्पर परब्रह्म साकेतविहारीके स्वयं मुखारविन्दसे निकली हैं, उन सबोंमें अपने गूढ़ाभिप्रायको जनतापर प्रकट करनेहीके लिये महाकविने '*सुहाई*', '*बर*' और '*गंभीर*' इन तीन विशेषणोंमेंसे किसी एकका प्रयोग अवश्य किया है। इस मीमांसाके अनुसार सरकारके अवतार लेनेसे पूर्व बालकाण्डमें पाँच बार और उत्तरकाण्डमें एक बार आकाशवाणीके होनेमें कोई गूढ़ रहस्य अवश्य है। शेष तीन वाणियोंमेंसे एक (छठवीं) जो देवताओंके द्वारा हुई वह प्रसंगानुकूल जगदाधार श्रीलक्ष्मणजीकी स्तुतिमें कही गयी है। महाकवि वहाँ स्पष्टरूपसे लक्ष्मणजीके ही मुखसे क्षात्र-धर्मानुकूल रघुकुलाभिमानका निदर्शन कराते हैं तथा सातवीं और आठवीं बार जो आकाशवाणियाँ हुई वे श्रीशिवजीके मुखारविन्दसे निकली हैं। इनके द्वारा मानसके आदिकवि श्रीशिवजीने भुशुण्डिजीके हृदयको रामतत्त्व धारण करने योग्य अति पवित्र बनाया और उनको कालान्तरमें लोमश ऋषिद्वारा रामचरितमानस प्राप्त करनेका शुभाशीर्वाद दिया।

इन नौके अतिरिक्त एक वाणी और ग्रन्थमें है। वह भानुप्रतापके प्रसंगमें है—'*परुसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकासबानी तेहि काला॥*'—यह वाणी कालकेतु राक्षसकी है जो उसने भानुप्रतापके नाशके निमित्त अन्तरिक्षसे कही थी।

नवीं वाणी स्वयं श्रीसरकारकी है और वह मानसके मुख्याधिकारी श्रीभुशुण्डिजीके प्रति आशीर्वादात्मक हुई है। इससे सूचित होता है कि लोमश ऋषिके आशीर्वचन जो काकभुशुण्डिप्रति कहे गये और सरकारने जिनका स्वयं समर्थन किया है। अधिकारप्राप्त रामचरितमानसमें माहात्म्य तथा फलरूपसे अद्यावधि विद्यमान हैं और रहेंगे।—(नारायणप्रसाद मिश्रजी)

☞चरित्र-और चरित्रनायक दोनोंके अवतार होनेके पूर्व पाँच ही बार ब्रह्मवाणी इसलिये हुई कि मृत्युलोकमें सरकारकी इच्छा पंचायतनरूपसे अवतार लेकर लीला करनेकी थी, जिसका संकल्पात्मक बीजरूप निदर्शन ब्रह्मवाणीद्वारा किया गया।

नोट—५ बाबा जयरामदासजी रामायणीके 'श्रीरामावतारके विभिन्न हेतु और उनके रहस्य' शीर्षक (कल्याण ५-६ में दिये हुए) लेखका खुलासा यह मालूम होता है कि वे श्रीरामजीको अगुण अरूप अखण्ड नित्य परब्रह्म निर्गुण और सगुण तथा उससे भी परे नहीं मानते, वरंच क्षीराब्धिशायी वा परवैकुण्ठनिवासी भगवान्‌का लीला-अवतार ही मानते हैं। त्रिपाद्विभूति परवैकुण्ठवासीका लीला-तन ही मनुजीके समीप आना कहते हैं। उनके ब्रह्म क्षीराब्धिशायी चतुर्भुज हैं। वे त्रिपाद्विभूति परवैकुण्ठके क्षीराब्धिशायी एवं परविष्णुका ही नाम हरि मानते हैं। वे लिखते हैं कि साकेत शब्द ग्रन्थमें कहीं नहीं आया, अतः साकेतसे मनुजीके सामने द्विभुजरूपका आना कहना भ्रम है।

☞इस विषयमें कुछ बातें सदा ध्यानमें रखनेसे भ्रमका निवारण पाठक स्वयं करनेको समर्थ रहेंगे। वे ये हैं—

१—'हरि' क्रिया गुणात्मक नाम है जो भगवान्‌के सभी विग्रहोंके लिये आता है, चाहे वे एक पाद्विभूतिस्थ हों, चाहे त्रिपाद्विभूतिस्थ, चाहे निर्गुण-निराकार इत्यादि हों, चाहे सगुण-साकार इत्यादि। यह शब्द ग्रन्थमें विष्णु, क्षीरशायी भगवान् और राम तीनोंके लिये आया है—'*भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान*' कहकर तुरत कहा है कि '*राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई।*' (१२८। १) इससे स्पष्ट है कि श्रीरामका ही नाम 'हरि' भी है। ग्रन्थके मङ्गलाचरणमें परब्रह्मका नाम राम बताया है—'**रामाख्यमीशं हरिम्**'। सतीजीको सर्वत्र राम ही त्रिपाद्विभूतिस्थ दिखायी दिये। पुनः मनुजीके सामने उपस्थितको '*छबि समुद्र हरिरूप बिलोकी*' कहकर भी यही दिखाया है कि 'राम' का ही नाम 'हरि' भी है। ये हरि द्विभुज हैं जिनका प्रतिपादन मानसमें है।

२—मानसमें कहीं साकेत, त्रिपाद्विभूति, परवैकुण्ठ आदि शब्द नहीं आये हैं। '*अगुण अखण्ड अरूप*' ब्रह्म कौन है और उसका स्थान कहाँ है, यह लोगोंने अपने-अपने मतानुसार टीकाओंमें लिखा है। मानसमें केवल '*बिस्वबास प्रगटे भगवाना*'- ये शब्द स्थानके लिये आये हैं जिसके लिये '*बिस्वबास प्रगटे*......' शब्द आये हैं उस निर्गुण अव्यक्त ब्रह्मका दर्शन मनु-शतरूपाजीको हो रहा है। उस अव्यक्त ब्रह्मका क्या रूप है वह यहीं दिखाया गया है।

३—यह दर्शन अवतारके लाखों वर्ष पूर्वका है। जो रूप सामने है वह 'लीला-तन' नहीं है, 'नरवेष' नहीं है, वह 'देह धरकर आना' नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो सम्मुख उपस्थित विग्रह ये वचन कदापि न कह सकता कि—'*इच्छामय नरबेष सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे॥*', '*अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता॥*'

४—मानसके उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि श्रीरामजी ही परधाम, अखण्ड, निर्गुण, व्यापक आदि विशिष्ट गुण सम्पन्न ब्रह्म हैं और वे अनेक लीलातन भी धारण करते हैं। वे अवतारी और अवतार दोनों हैं। नित्य अखण्ड, अगुण इत्यादि रूप वह था जो मनुजीके सामने था और लीलातन वह था जो दशरथ-अजिर-विहारी हुआ और जिसने समस्त लीला की।

५—ब्रह्म श्रीराम जिनका मानसमें प्रतिपादन है, उनका अपना धाम भी होना मानसमें ही स्पष्ट कहा गया है। यथा—'*रामधामदा पुरी सुहावनि*', '*मम-धामदा पुरी सुखरासी*' (वक्ता श्रीरामजी हैं, अतः मम=राम), '*पुनि मम धाम सिधाइहहु जहाँ संत सब जाहिं*' (इससे रामधाममें सब सन्तोंका जाना और उसका नित्य त्रिपाद्विभूतिस्थ होना कहा।)

६—त्रिपाद्विभूतिस्थ रामधामको 'साकेत, अपराजिता, अयोध्या' इत्यादि अनेक नामसे कहा गया है। 'राम' ब्रह्म हैं, यह मानसभरमें सर्वत्र दिखाया गया है—'*राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना*' इत्यादि। और

श्रीरामतापनीय आदि अनेक उपनिषदों, नारदपाञ्चरात्र तथा अनेक स्मृतियों, संहिताओं और पुराणोंसे प्रतिपादित है—पूर्व भी और आगे तथा उत्तरकाण्डमें प्रमाण भी दिये गये हैं।

७—भुशुण्डि मनमानसहंस *'बालक रूप राम'* हैं—*'इष्टदेव मम बालक रामा'* और शिवजी भी उसी रूपके उपासक जान पड़ते हैं,—*'बंदउँ बालरूप सोइ रामू'* पर वह मनुजीके सामने नहीं है। दूसरे, मनुजीके सामने तो भगवान् श्रीसीताजीसहित हैं और किशोर अवस्थाके हैं।—ठीक यही रूप उपनिषदोंमें ब्रह्म रामका कहा गया है। अतएव पाठक स्वयं सोच लें कि मनु-समीप आया हुआ दर्शन साक्षात् ब्रह्मका है या उनके लीलातनका।

☞ यह भी स्मरण रहे कि उपासना ब्रह्महीकी की जाती है।

८—क्षीरसिन्धु, वैकुण्ठ और उनके पर्याय शब्द जो नारदकल्प, जयविजयकल्प वा जलंधरकल्पके प्रसङ्गोंमें आये हैं वे एकपाद्विभूतिस्थ हैं न कि त्रिपाद्विभूतिस्थ, शापादि त्रिपाद्विभूतिस्थको नहीं होते, त्रिपाद्विभूतिमें जाकर पुनरागमन नहीं होता। इत्यादि। पर त्रिपाद्विभूतिस्थ सर्वव्यापक विश्ववास ब्रह्म राम अपने एकपाद्विभूतिस्थ साकार विग्रहोंको मिले हुए शाप स्वयं अपने ऊपर ले लेते हैं, जब उनकी ऐसी इच्छा हो।

९—भगवान्‌के सब नाम नित्य हैं, श्रीराम ब्रह्म सर्वनामनामी हैं।

१०—नारदवचन प्रत्येक कल्पमें सत्य किया जाता है। रावणवधार्थ सदा नरवेष धारण किया जाता है, सदा सीता-हरण और विरह-विलापका नाट्य होता ही है और सदा ही वानरोंकी सहायता ली जाती है—बस यही तीन वचन नारदके हैं।

११—प्राय: कश्यप और अदिति ही मनु और शतरूपा होते हैं। दोहा १८७ (३—५) देखिये।

नोट—६ बाबा जयरामदासजीका मत मानसमें दिये हुए कल्पोंके प्रसंगोंके विषयमें यह है कि यह सब एक ही व्यापक ब्रह्मकी लीला है। वे लिखते हैं कि आकाशवाणीके 'प्रसङ्गमें यह विचारणीय है कि यदि प्रभु एक न होते तो जहाँ भानुप्रतापके रावण होनेपर पृथ्वीको दु:ख है, स्वायम्भुव मनु और शतरूपाको दशरथ और कौसल्याके रूपमें जन्म लेना है, वहाँ कश्यप-अदितिके तथा नारदवचनके सत्य करनेका जिक्र क्यों आता? नारदशापकी बात तो क्षीराब्धिनाथके समक्षकी है, कश्यप-अदितिको तो जय-विजयके राक्षस बननेके अवसरपर दशरथ और कौसल्याके रूपमें जन्म लेना है। सारांश यह कि यह सब एक ही व्यापक ब्रह्मकी लीला है।'

यदि इसका तात्पर्य यह है कि शापादि चाहे जिसको हो पर रावणवधके लिये व्यापक ब्रह्मका ही अवतार होता है (वह ब्रह्म भिन्न-भिन्न मतानुसार जो भी हो) तब तो यह भाव बाबा श्रीहरिदासाचार्यके पुष्ट किये हुए सिद्धान्तके अनुकूल ही है, जो वे० भू० पं० रामकुमारदासजी तथा स्वतन्त्र सम्पादकीय टिप्पणीमें यत्र-तत्र दिया गया है।

श्रीभाईजी हनुमानप्रसादपोद्दारजी लिखते हैं—'भगवान् श्रीरामका प्रपञ्चातीत भगवत्स्वरूप कैसा है, इस बातको तो भगवान् ही जानते हैं। संसारमें ऐसा कोई नहीं है जो उनके स्वरूपकी यथार्थ और पूर्ण व्याख्या कर सके।....' भगवान्‌का जो कुछ भी वर्णन है, वह पूरा न होनेपर भी उन्हींका है और इस दृष्टिसे भगवान्‌के सम्बन्धमें जो जैसा कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। भगवान् श्रीराम परात्परब्रह्म भी हैं, विष्णुके अवतार भी हैं, महापुरुष भी हैं, आदर्श राजा भी हैं और उनके काल्पनिक होनेकी कल्पना करनेवाला मन आत्मरूप भगवान्‌का ही आश्रित होनेके कारण वे काल्पनिक भी हैं। बात यह है कि भगवान्‌का स्वरूप ही ऐसा है, जिसमें सभीका समावेश है, क्योंकि सब कुछ उन्हींसे उत्पन्न है, उन्हींमें है, सबमें वे ही समाये हुए हैं वे ही *'सर्व' 'सर्वगत', 'सर्व उरालय'* हैं।

'दशरथात्मज राम साक्षात् भगवान् हैं। हाँ, कल्पभेदसे भगवान् विष्णु रामरूपमें अवतीर्ण होते हैं तो कभी साक्षात् पूर्णब्रह्म परात्पर भगवान्‌का अवतार होता है। परन्तु यह स्मरण रहे कि विष्णु भी भगवान्‌हीके स्वरूप हैं, इसलिये स्वरूपत: इनमें कोई तारतम्य नहीं है, लीलाभेदसे ही पृथक्त्व है। वे पूर्णब्रह्म, परात्परब्रह्म और साक्षात् 'भगवान् स्वयं' हैं।'

अनेकों ब्रह्माण्ड हैं और सभी ब्रह्माण्डोंमें कल्पभेदसे भगवान्के अवतार होते हैं। बहुत बार भगवान् विष्णु ही रामावतार धारण करते हैं, जिस समय विष्णुभगवान्का श्रीरामरूपमें अवतार होता है, उस समय श्रीलक्ष्मीजी उनके साथ सीतारूपमें अवतीर्ण होती हैं और जिस समय स्वयं परात्पर प्रभु अवतीर्ण होते हैं, उस समय उनकी साक्षात्स्वरूपा शक्ति अवतार धारण करती हैं। परात्पर श्रीरामके लिये महारामायणमें कहा गया है—'**भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः। करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम्॥**'

जिस प्रकार परात्पर समग्र ब्रह्म श्रीरामसे समस्त ब्रह्माण्डोंमें भिन्न-भिन्न शिव, विष्णु और ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार उनकी स्वरूपाशक्तिसे अनेकों ब्रह्माण्डोंमें अनेकों उमा, रमा और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं। परात्पर ब्रह्म ही इन सब रूपोंमें प्रकट हैं और उन्हींकी शक्तिसे ये सब कार्य करते हैं और उतना ही कार्य करते हैं जितनेके लिये विधान है। इसी बातको बतलानेके लिये श्रीरामरूप परात्पर पुरुषोत्तम ब्रह्मकी इस प्रकार महिमा गायी गयी है—'*जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥ बिष्नु कोटि सम पालनकर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥*''*बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥*'

रामायणमें '*ब्रह्म*' शब्द प्रायः परात्पर समग्र ब्रह्मके लिये ही आया है, वेदान्तियोंके निर्गुण ब्रह्मके लिये नहीं। क्योंकि वह तो गुणोंसे सर्वथा रहित है और वह भगवान्की एक अभिव्यक्तिमात्र है। उसका अवतार नहीं होता, अवतार तो सगुण ब्रह्मका ही होता है। (पर मानसका मत यह नहीं जान पड़ता)।

तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जिय आवा॥ ९॥
दो०—निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहै सिखाइ।
बानर तन धरि धरि* महि हरिपद सेवहु जाइ॥ १८७॥

अर्थ—तब ब्रह्माजीने पृथ्वीको समझाया। वह निर्भय हुई और उसके जीको भरोसा (ढाढ़स, सन्तोष वा विश्वास) हुआ॥ ९॥ देवताओंको यही शिक्षा देकर कि तुम लोग पृथ्वीपर जाकर वानरविग्रह धारण करके भगवत्-चरणकी सेवा करो, ब्रह्माजी अपने लोकको गये॥ १८७॥

नोट—१ '*तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा*' इति। देवताओंने स्पष्ट सुना, अतः वे निर्भय और सुखी हो गये। तब ब्रह्माने पृथ्वीको समझाया, इस कथनसे जान पड़ा कि पृथ्वी वहीं खड़ी रही, वह न गयी! देवताओंका कानसे वाणी सुनना और हृदय जुड़ाना कहा और इसके विषयमें ऐसा न कहकर ब्रह्माका उसको समझाना कहा। इससे स्पष्ट है कि धरणी आकाशवाणीको नहीं समझ सकी। इसका कारण प्रथम ही कह चुके हैं कि वह रावणके भयसे शोकातुर थी। शोकसे परम बिकल थी; यथा—'***सँग गोतनधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका।***' परम व्याकुलतामें चेतनाशक्ति जाती रहती है। खड़ी देखकर ब्रह्माने उसे समझाया। पं० रामकुमारजी कहते हैं कि धरणी जड़, है अतः वह न समझ सकी। वि० त्रि० कहते हैं कि ब्रह्माने पृथ्वीको हरिपद-स्मरणका उपदेश दिया था, यथा—'***धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु॥***' (१८४)। वह तबसे हरिपदका स्मरण करती रही, इसीसे उसने बात नहीं समझी। ब्रह्माने बताया कि आकाशवाणी हुई है, उसका तात्पर्य यह है।

वै० भू० जी कहते कि जब देवगण तो प्रसन्न हो गये, किंतु पृथ्वीकी उदासी न गयी तब इसे समझाना पड़ा। 'आकाशवाणी तो स्पष्ट ही है; पृथ्वीकी समझमें क्या नहीं आया जो समझाना पड़ा और क्या समझाया?' यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है। इसका उत्तर यह है कि '***नारद बचन सत्य सब करिहौं***' का आशय उसे न समझ पड़ा। उसने समझा कि नारदशाप तो

* धरि धरनि—को० रा०, १७०४। धरि महि—१६६१, १७२१, १७६२।

क्षीरशायी विराट्को हुआ, वे ही अवतार लेंगे तो इस रावणका वध उनसे कैसे हो सकता है, क्योंकि यह रावण तो राजरोग-सरीखा उनको सदा व्याकुल किये रहता है, वे उसका कुछ नहीं कर सकते। यथा—*'रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर दिन दिन बढ़त सकल सुख राँक सो।'* (क० सु०)। इसीसे उसे समझाना पड़ा कि श्रीरामजीको परोक्ष प्रिय है—'**परोक्षवादा ऋषयः परोक्षो हि मम प्रियः।**' (भा० ११) अतः इस वाणीमें भी परोक्षवाद है। अवतार तो साकेतसे ही होगा, क्योंकि दाशरथि राम वे ही होते हैं दूसरा नहीं। तब उसको शान्ति मिली।

नोट—२ *'अभय भई भरोस जिय आवा।'* इति। ब्रह्माके समझानेसे वह निर्भय हुई। क्या भरोसा हृदयमें आया? यही कि *'प्रभु भंजिहि दारुन बिपति।'* ब्रह्माने क्या समझाया? यही कि आकाशवाणी हुई है कि *'हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु"।'* प्रभु सम्पूर्ण भारको हरेंगे। अवधपुरीमें राजा दशरथजीके यहाँ नररूपसे अवतार लेकर रावणका सपरिवार नाश करेंगे। *'धरनि धरहि मन धीर'* और भगवान्‌का स्मरण कर। पुनः विजयदोहावलीके अनुसार ब्रह्माजीका पृथ्वीको इस तरह धीरज देना कहा जाता है कि हम तेरे लिये त्रेतायुग द्वापरके पहिले ही किये देते हैं। यथा—*'सुनि ब्रह्माके बचन महि तब मन कीन्ह बिचार। द्वापर दीन्हे पाछ करि त्रेता कियो अगार॥'* कल्पभेदसे ऐसा हो सकता है पर इस ब्रह्मवाणीसे दशरथकौसल्याका आविर्भाव आकाशवाणीके पूर्व ही हो चुकना स्पष्ट है और वे त्रेतामें हुए ही हैं, इस वाणीमें इस भावसे विरोध देख पड़ता है। दूसरे सत्ययुगके बाद प्रथम द्वापर था—इसका कोई प्रमाण नहीं।

नोट—३ ☞पृथ्वीके भयका प्रसङ्ग *'अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी।'* (१८४। ४) से चला। *'परम सभीत धरा अकुलानी'* उपक्रम है और *'अभय भई भरोस जिय आवा।'* (१८७। ९) उपसंहार है। इस तरह *'भरोस जिय आवा'* का भाव खोला कि व्याकुलता दूर हो गयी। मनको विश्राम हुआ, यथा—*'भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा।'* (१८८। १)

नोट—४ *'निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहै सिखाइ'* इति। ब्रह्माने ही धरणीको समझाया (क्योंकि वह समझी न थी) और देवताओंको सिखाया, क्योंकि ये सबोंसे बड़े हैं और यही यहाँ अगुआ भी हैं।

नोट—५ अ० रा० में मिलते हुए श्लोक ये हैं—'**यूयं सृजध्वं सर्वेऽपि वानरेष्वंशसम्भवान्। विष्णोः सहायं कुरुत यावत्स्थास्यति भूतले॥**' **इति देवान्समादिश्य समाश्वास्य च मेदिनीम्। ययौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः॥**' (१। २। ३०-३१) अर्थात् तुमलोग भी सब अपने-अपने अंशसे वानरवंशमें पुत्र उत्पन्न करो और भगवान् विष्णुकी सहायता करो। देवताओंको यह आज्ञा देकर और पृथ्वीको ढाढ़स बँधाकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये।

वाल्मी० १। १७ में ब्रह्माकी आज्ञा पाँच श्लोकोंमें है। उन्होंने कहा है कि प्रधान अप्सराओं, गन्धर्वकी स्त्रियों, यक्ष और नागकी कन्याओं, भालुकी स्त्रियों, विद्याधरियों, किन्नरियों और वानरियोंमें अपने समान पुत्र आपलोग उत्पन्न करें, पर उनका रूप वानरका होना चाहिये। वे वानर किन गुणोंसे सम्पन्न हों यह भी बताया है।

पं० रामकुमारजी—'पूर्व रावणने वर माँगा था कि *'हम काहूके मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे॥'* आकाशवाणी हुई कि *'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।"'* अर्थात् हम मनुजरूपसे अवतरेंगे, इसीसे ब्रह्माने देववृन्दको वानररूप धरनेकी आज्ञा दी। साक्षात् देवता भूमिपर पैर नहीं धरते इसीसे स्पष्ट कहा कि पृथ्वीपर जाकर रहो।' वानरतन धरनेको इससे भी कहा कि ब्रह्मवाणीमें है कि *'नारद बचन सत्य सब करिहौं'* और नारदजीने कहा ही था कि *'करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी।'*

नोट—६ यहाँ यह शङ्का प्रायः की जाती है कि पूर्व कहा है कि *'सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका'* और फिर वहाँसे ब्रह्माका अन्यत्र जाना नहीं कहा गया।

तो फिर *'निज लोकहि बिरंचि गे'* कहनेका क्या अभिप्राय है? इसका समाधान कई प्रकारसे किया गया है। १—यह क्षीरशायीवाले कल्पके अनुसार है। अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि ब्रह्मादि क्षीरसागरको गये थे, फिर वहाँसे लौटकर ब्रह्मलोकको आये। यथा—**'तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद् ब्रह्माथ देवैर्वृतो'**...।' (अ० रा० १। २। ७)"**ययौ ब्रह्मा स्वभवनं**'...।'(३१) २—ब्रह्माजीके दो लोक हैं, एक तो सुमेरपर जिसे सभालोक वा सुरसभा स्थान कहते हैं; दूसरा उनका निजलोक ब्रह्म वा सत्यलोक। सभालोकमें ब्रह्माकी कचहरी होती है। वहीं सब जाकर अपनी पुकार किया करते हैं; वहीं अबकी भी गये। वहीं स्तुति हुई। अब वहाँसे ब्रह्माजी अपने निजलोकको गये। पूर्व *'बिरंचिके लोका'* से कचहरी और *'निज लोकहि'* से ब्रह्मलोक जानिये। ३—ब्रह्माजीने सबको वानरतन धरनेकी आज्ञा दी और फिर आप भी अपने लोक किष्किन्धाको जाम्बवान्‌रूप धारण करके गये। वा ४—*'निज लोकहि'* अपने बारेमें कहा कि हम भी जाम्बवान्‌रूप धरकर जाते हैं, तुम भी चलो। यथा—**'पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुङ्गवः॥'**(वाल्मी० १। १७। ७)

प्रोफेसर श्रीरामदासजी गौड़ इस विषयमें यह लिखते हैं—*'बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥'* प्रश्न होता है कि यह देवसभा कहाँ बैठी थी? यह तो निश्चय है कि वैकुण्ठमें और क्षीरसागरमें नहीं थी, नहीं तो इन दोनों जगहोंपर जानेका प्रस्ताव न होता। ब्रह्मलोकमें भी यह सभा नहीं बैठी, क्योंकि आगे कहते हैं, *'निज लोकहि बिरंचि गे।'* किसी और देवताके धाममें भी नहीं थी, क्योंकि *'गये देव सब निज निज धामा'* इसका निषेधार्थक है। ब्रह्माजीके लोकतक जानेका तो उल्लेख है ही। *'धरनि धरहि'...बिपति।'* यही ब्रह्माजीका अन्तिम वाक्य ब्रह्मलोकमें है। ब्रह्माजीने जब अनुमान कर लिया कि *'मोर कछू न बसाई'* मेरा भी कोई बस नहीं है, तब आगे उनका कर्त्तव्य क्या रहा?

बेबसीकी बात यह थी कि ब्रह्मा और शिवने ही मिलकर रावणको वर दिया था। देवताओंकी मण्डलीमें जो ब्रह्मलोक पहुँची थी, भगवान् शंकरकी चर्चा नहीं है। परन्तु जब देवता लोग कहीं बैठकर विचार करते हैं तो वहाँ भगवान् शंकर कहते हैं—*'तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ।'* अपना उस समाजमें उपस्थित रहना पहले-पहल कहते हैं; कथा कहनेवाले स्वयं ठहरे। अन्तमें ब्रह्मादि देवताओंका अपने-अपने धामको जाना भी कहते हैं—*'गए देव सब निज निज धामा।'* परन्तु अपने जानेकी वा अपने स्थानको चले आनेकी कोई चर्चा नहीं करते। प्रसङ्गसे यह स्पष्ट होता है कि भगवान् शंकर 'उस समाजमें थे और अपने ही स्थानपर थे', इसीलिये न अपने आनेकी चर्चा की, न जानेकी। समाजमें उपस्थित रहनेमात्रकी चर्चा स्पष्ट कहे देती है कि यह देवसभा शिवलोकमें हुई थी, और यह परम्परा भी चली आयी है कि जब-जब देवोंपर संकट पड़ता है, ब्रह्माजी सब देवताओंको लेकर पहले भगवान् शंकरके पास जाते हैं, तब सब मिलकर भगवान् विष्णुके पास जाते हैं। यह सदाकी विधि यहाँ भी बरती गयी है।

प्रसङ्ग और ध्वनिसे ही घटनास्थलकी सूचना देना कवित्वका अपूर्व चमत्कार है। साथ ही यह भी कोमलता ध्यान देनेयोग्य है कि भगवान् शंकर स्वयं कथा कहते हैं, अपनी महत्तासूचक किसी घटनाका वर्णन, विशेषतः अपने इष्टदेवकी चर्चाके साथ, विनय और शिष्टाचारके विरुद्ध है। भगवान् शंकर तो उस सभाके प्रमुखोंमेंसे हैं, उन्हींके पास लोग दोहाई देने गये हैं। परन्तु शालीनता और नम्रताकी हद है कि कहते हैं—*'तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन इक कहेऊँ॥'* फिर *'मोर बचन सबके मन माना। साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना॥'*, बात सबको भा गयी। विनयपूर्वक कहनेका कैसा उत्तम ढंग है। वास्तवमें भगवान् शंकरका फैसला था कि काम यों होना चाहिये। (स्वभावतः ब्रह्माजी अगुआ हुए, जिनकी सृष्टि थी, जिनकी रक्षा उन्हें इष्ट थी, पर उनके हाथमें न थी। आकाशवाणीके बाद सभा विसर्जित हुई। भगवान् शंकर रह गये। सब चले गये।)

गये देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ बिस्रामा॥ १॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा॥ २॥
बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥ ३॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरिमारग चितवहिं मति धीरा॥ ४॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरि* पूरी। रहे निज निज अनीक रचि† रूरी॥ ५॥

अर्थ—सब देवता अपने-अपने स्थानको गये। पृथ्वीसहित सबके मनको विश्राम हुआ॥ १॥ ब्रह्माजीने जो कुछ आज्ञा दी थी उसमें देवता प्रसन्न हुए और (उसके पालनमें) देर न की॥ २॥ पृथ्वीपर उन्होंने वानरदेह धारण की। उनमें बेअन्दाज (अमित) बल और प्रताप था॥ ३॥ सब वीर थे। पर्वत, वृक्ष और नख उनके अस्त्र-शस्त्र थे। वे धीरबुद्धि भगवान्‌की राह देखने लगे॥ ४॥ अपनी-अपनी सेना बनाकर जहाँ-तहाँ पर्वतों और जंगलोंमें वे भरपूर छा गये॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'गए देव सब निज निज धामा।…'* इति। ब्रह्माजी अपने लोकको गये, यथा—*'निज लोकहिं बिरंचि गे'* और देवता अपने-अपने धामको गये। भाव कि ये धामसे भागे-भागे फिरते थे—*'देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा'*, अब निर्भय होनेसे निज-निज धामको गये। *'मन कहुँ बिश्रामा'* कहनेका भाव कि शोक और सन्देहके कारण मनका विश्राम चला गया था, शोक-सन्देह मनमें होता है। आकाशवाणीसे शोक-सन्देह दूर हुआ। अतः अब मनको विश्राम हुआ। (ख) *'भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा'* कहनेका भाव कि यहाँ भूमि मुख्य है, प्रथम यही व्याकुल होकर देवोंके पास गयी थी, देवता उसे लेकर ब्रह्माके पास गये। (ग) *'हरषे देव बिलंब न कीन्हा'* इति। ब्रह्माजीकी आज्ञा है कि *'बानरतनु धरि धरि महि हरिपद सेवहु जाइ'*; इसमें भगवान्‌के चरणोंकी प्राप्ति समझकर हर्ष हुआ, वानरतन धरनेकी आज्ञा-पालन करनेमें खेद न हुआ। क्योंकि जिस शरीरसे भगवान्‌की प्राप्ति हो वही सुन्दर है, यथा—*'जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान। रुद्रदेह तजि नेह बस बानर भे हनुमान॥'* (दोहावली १४२) *'सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तन पाइ भजिअ रघुबीरा॥'* (७। ९६)। दोहा १८। २ मा० पी० भाग १ देखिये। भगवान्‌के चरणोंकी प्राप्तिका और शत्रुको मारनेका बड़ा उत्साह हुआ। इसीसे विलम्ब न किया। अथवा, भगवान्‌ने शीघ्र ही अवतार लेनेको कहा है, यथा—*'तिन्ह के गृह अवतरिहौं जाई'*, अतएव तुरन्त आज्ञा-पालन की।

टिप्पणी—२ (क) *'जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा'*। आज्ञा प्रथम लिख चुके हैं वही यहाँ *'जो कछु'* से जनायी। अथवा भाव कि आज्ञा होनेपर फिर उसपर कुछ भी विचार न किया कि हम देवतन छोड़कर वानर कैसे हों; क्योंकि गुरुजनोंकी आज्ञा पाकर उसमें तर्क-वितर्क करना, उसपर विचार करना कि करनेयोग्य है या नहीं, करें या न करें, दोष माना गया है। यथा—*'मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥'* (७७। ३) *'गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी।' सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥ उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥'* (१७७) विचार करनेसे पाप लगता, अतः विचार न किया। मुदित होकर बड़ोंका वचन मानना चाहिये, अतः हर्षित होकर आज्ञाका पालन किया। *'बिलंब न कीन्हा'* में ध्वनि यह है कि यह आज्ञा ऐसी थी कि इसके करनेमें संकोच होता, इसमें दुःख और विलम्ब करनेकी बात थी, वह यह कि देवतासे वानर होना निषिद्ध है। [पंजाबीजीका मत है कि हर्ष इससे हुआ कि इस कार्यसे शोक हरण होनेकी आशा है, दूसरे भगवत्-सेवामें मन लगेगा और तीसरे इस शरीरसे रावणसे बदला भी लेंगे।] (ख) ब्रह्माजीने शरीर धारण करनेकी आज्ञा दी क्योंकि शरीर धारण उन्हींकी आज्ञासे होता है, कर्मके अनुसार ब्रह्मा तन देते हैं।

---

* —महि पूरी—१७२१, छ०। भरि पूरी—१६६१, १७०४, १७६२, को० रा०। †—'रुचि रूरी'—१७०४, १७६२। रचि रूरी—१६६१, को० रा०। छ० का पाठ है—'रहेनि तहाँ निज निज रचि रूरी'।

टिप्पणी—३ *'बनचर देह धरी छिति माहीं।…'* इति। देवता (अपने साक्षात्-रूपसे) पृथ्वीका स्पर्श नहीं करते, वानररूपसे उन्होंने उसका स्पर्श किया। जैसे देवोंमें अतुलित बल और अतुलित प्रताप होता है वैसा ही वानरोंमें है।

नोट—१ जब उतना ही बल है तब ये रावणका क्या कर सकेंगे, भागे-भागे फिरेंगे? यह शंका हो सकती है। इसका समाधान यह है कि वरदानके कारण देवबल उसपर कुछ कारगर नहीं होता, नहीं काम देता। वानर और मनुष्य दोको वह छोड़ चुका है, उनमें जब वह देवबल होगा। तब तो वह पराजित होगा ही। पुनः, अतुलितका भाव यह भी हो सकता है कि देव-शरीर और राक्षसोंसे इनमें अधिक बल है।

वाल्मीकीयमें ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा है कि आपलोग अपने समान पराक्रमी वानररूपधारी पुत्र उत्पन्न करें जो बलवान् हों, कामरूप हों, राक्षसीमायाको जान सकते हों, वीर, नीतिज्ञ, वायुवेगवाले, अवसरानुकूल उपाय करनेकी बुद्धिवाले, अस्त्र-विद्याके ज्ञाता और विष्णुके समान पराक्रमवाले हों। यथा—**'विष्णोः सहायान्बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः॥ मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमाञ्जवे। नयज्ञान्बुद्धिसंपन्नान्विष्णुतुल्यपराक्रमान्॥ असंहार्यानुपायज्ञान् सिंहसंहननान्वितान्। सर्वास्त्रगुणसंपन्नानमृतप्राशनानिव॥ ……सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान्॥'**(सर्ग १७। २—४, ६)। वे ऐसे हों कि शत्रुद्वारा अपने पक्षसे हटाये न जा सकें।—ये सब भाव *'अतुलित बल प्रताप तिन्ह माहीं'* में आ जाते हैं। जैसे राक्षसोंका बल कहनेमें *'अति बल कुंभकरन अस भ्राता।'* इत्यादि कहा है, वैसे ही उनसे विशेष बल होनेका भाव यहाँ *'अतुलित बल…'* से जनाया। अतुलित प्रताप कहकर जनाया कि ये जयमान होंगे क्योंकि प्रतापसे सर्वत्र जय होती है।

वे० भू० जीका मत है कि देवशरीरमें इनपर रामकृपा नहीं थी, इसीसे राक्षसोंसे भागे-भागे फिरते थे। जिसपर रामकृपा होती है उसके लिये तो कहा गया है कि *'प्रभु प्रताप ते गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल'* इत्यादि। वानरशरीरमें उनपर कृपा होनेसे उनमें अतुलित बल आ गया। यथा—*'राम कृपा अतुलित बल तिन्हहीं', 'रामकृपा बल पाइ कपिंदा। भए पछयुत मनहुँ गिरिंदा॥'* इसीसे वानररूपसे वे राक्षसोंपर विजयी हुए।

नोट—२ *'बनचर देह धरी'* इति। देवता, महर्षि, गरुड़, नाग, किंपुरुष, सिद्ध, विद्याधर, उरग सभीने हजारों पुत्र उत्पन्न किये। चारणोंने अप्सराओं, विद्याधरियों, नागकन्याओं और गन्धर्विनियोंसे कामरूपी सिंहसमान गर्वीले बलवान् वानर उत्पन्न किये, नख और पर्वत ही जिनके आयुध हुए। इन्द्रने बालिको, सूर्यने सुग्रीवको, बृहस्पतिने बुद्धिमान् तारको, कुबेरने गन्धमादनको, विश्वकर्माने नलको, अग्निने नीलको, अश्विनीने मयन्द और द्विविदको, वरुणने सुषेणको, पर्जन्यने शरभको उत्पन्न किया, वायुके द्वारा (रुद्रसे) हनुमान् और ब्रह्मासे जाम्बवान् उत्पन्न हुए। इन सबोंका बल अप्रमेय था, **'अप्रमेयबला वीराः'** (वाल्मी० १। १७। १८) ही मानसका *'अतुलित बल'* है।

टिप्पणी—४ पूर्व कहा था कि *'गये देव सब निज निज धामा'* और यहाँ कहते हैं कि *'बनचर देह धरे छिति माहीं'* इससे जनाया कि साक्षात् देवरूपसे वे सब अपने-अपने धाममें भी रहे और अपने-अपने अंशोंसे वानरतनसे पृथ्वीमें अवतरित भी हुए। ☞बल और प्रतापसे शत्रु जीता जाता है, इसीसे वानरतनमें दोनोंका वर्णन किया।

टिप्पणी—५ *'गिरि तरु नख आयुध सब बीरा…।'* इति। *'हरि मारग चितवहिं'* का भाव तो यह है कि सब वीर हैं, मतिधीर है, अतः राह देखते हैं कि कब भगवान् आवें, शत्रुपर चढ़ाई करें तो हम भी चलकर युद्ध करें। दूसरे यह कि ब्रह्माजीकी दो आज्ञाएँ हैं, एक तो वानरतन धरकर पृथ्वीपर रहनेकी सो वानरतन तो धारण ही कर लिये। दूसरी आज्ञा है कि *'हरिपद सेवहु जाइ।'* वह हरिपद-सेवा अभी बाकी है। उसके लिये हरिकी राह देख रहे हैं। इस तरह दोनों आज्ञाओंमें तत्पर दिखाया। पुनः *'हरि मारग चितवहिं'* कहकर सूचित करते हैं कि ब्रह्माजीने यह

भी कह रखा था कि भगवान् आकर तुमको मिलेंगे। अतः उनकी बाट जोह रहे हैं। *'गिरि तरु नख'* आयुध हैं, यह कहकर जनाया कि अपनेको छिपाये हुए हैं। रावणकी मृत्यु नर-वानरके ही हाथ है, अन्यसे नहीं है। अतः जैसा रूप धारण किया, वैसे ही हथियार भी हैं। ☞यहाँ वानरोंमें चार गुण दिखाये—बल, प्रताप, वीरता और बुद्धि।

टिप्पणी—६ अध्यात्मरामायणमें मिलता हुआ श्लोक यह है—**'देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः स्थिता सहायार्थमितस्ततो हरेः। महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम्॥'** (१। २। ३२)

टिप्पणी—७ *'गिरि कानन'''* इति। पं० रामकुमारजी *'महि पूरी', 'रुचि रूरी'* पाठ देकर अर्थ करते हैं कि वानरोंसे पृथ्वी पूर्ण हो गयी, अपनी सुन्दर रुचिसे वे वानर हुए हैं। 'भरिपूरी=भरपूर पूर्ण भरकर। *'निज निज अनीक रचि'* से जनाया कि सेना और सेनापति दोनों हैं। जो विशेष देवता हैं, वे राजा और सेनापति हैं और जो सामान्य हैं वे सेनाके सुभट हैं। भाव यह कि देवोंमें जो मुखिया थे, वे यहाँ भी मुखिया हुए, जैसे वहाँ उनके यूथ थे, वैसे ही यहाँ भी उनके यूथ हैं और वे यूथपति हैं।

श्रीलमगोड़ाजी—१ कलाके दृष्टिकोणसे देवताओंकी प्रार्थना और आकाशवाणीका प्रसङ्ग बड़े महत्त्वका है। यह प्रसङ्ग इतना सुन्दर है कि भारतवर्षमें नाटकोंके प्रारम्भमें अभिनेताओंका एकत्रित होकर प्रार्थना करनेके दृश्यकी प्रथा ही चल पड़ी।

२—नाटकीय और महाकाव्य-कला दोनोंका बड़ा सुन्दर एकीकरण है। यह विचारणीय है कि मिल्टनने भी जब 'पैराडाइज लास्ट' को नाटकीयमहाकाव्यरूपमें लिखना प्रारम्भ किया था, तब दैविक प्रार्थनासे ही प्रारम्भ किया था।

३—*बनचर*—(१) वास्तवमें देवता ही थे—(२) आधिदैविकवादके अनुसार तुलसीदासजीने पृथ्वी, पर्वत, सूर्य इत्यादिके अभिमानी देवताओंका रूप माना है। अधिक विस्तारसे आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक वादोंकी विवेचना देखनी हो तो तिलकका 'गीता-रहस्य' देखिये। (३) हम यदि तुलसीदासजीके मतसे सहमत न हों तो भी उनके ग्रन्थोंके समझनेके लिये उनके मतसे उतनी सहानुभूति अवश्य रखनी चाहिये जितनी मिल्टन पढ़ते समय उस महाकविके मतसे एक अंग्रेज रखता है।

यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहि राखा॥ ६॥

अर्थ—मैंने यह सब सुन्दर चरित कहा। अब वह (चरित) सुनो जो बीचमें रख छोड़ा था॥ ६॥

वि० त्रि०—रावणवतारके चरितको रुचिर कहते हैं, पुनीत नहीं कह सकते। बहुत उच्चकोटिके जीव शापित होकर रावण होते हैं। उन्हींके कारण साक्षात् प्रभुको नर-शरीर धरकर आना पड़ता है। अतः रावणका चरित भी रुचिर है। वह जो स्वाँग लेता है उसका ऐसा पूरा निर्वाह करता है कि सिवा प्रभुके आनेके उपायान्तर नहीं रह जाता।

टिप्पणी—१ (क) *'सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए।'* (१२१। १) उपक्रम है और *'यह सब रुचिर चरित मैं भाषा'* उपसंहार है। *'सब चरित'* अर्थात् जय-विजय, जलन्धर, नारद, मनु, भानुप्रताप, रावणके जन्म, तप, विभव और उपद्रव, पृथ्वी और देवताओंकी व्याकुलता, ब्रह्मस्तुति देवताओंका वानरतन धारण करना—यह सब कहे। (ख) *'जो बीचहि राखा'* इति। भगवान्ने मनुजीसे कहा था कि *'होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत।'* (१५१) इस (अवधमें जाकर राजा हुए इत्यादि) कथाका वहाँ मौका न था, इससे श्रीदशरथजीकी कथा बीचमें छोड़ दी थी। अब रावणके अत्याचार होनेपर, ब्रह्माके स्तुति करनेपर आकाशवाणी हुई कि हम दशरथजीके यहाँ रघुकुलमें अवतार लेंगे। अतः अब उस कथाका उचित समय है। पुनः भाव कि शिवजीने पार्वतीजीसे रामावतार कहनेकी प्रतिज्ञा की थी, यथा—*'सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ।'* (१२०) और कहने लगे हेतु, यथा—*'हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥'* (१२१। २) इत्यादि यहाँतक अवतारके हेतु कहे। अवतार बीचमें कहना रह गया, केवल हेतु-हेतु कहे! अब अवतार सुननेको कहते हैं।

नोट—१ पं० शिवलाल पाठकजीके मतानुसार रावणका दिग्विजय आदि कहते-कहते नारदकल्पकी स्तुति और ब्रह्मवाणी कहने लगे थे। अब उसको समाप्त करके फिर पूर्व कथाका प्रसङ्ग मिलाते हैं। नारदकल्पकी स्तुति और ब्रह्मवाणी इससे बीचमें कह दी कि जिसमें परतम प्रभुका अवतार गुप्त रहे, यथा—*'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ।'*

टिप्पणी—२ सब कल्पोंमें कुम्भकर्ण और रावणका जन्म कह-कहकर तब रामजन्म कहा है। यथा—(१) *'भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान। कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥'* (१२२) '''*एक बार तिन्हके हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥'* (२) *'तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परमपद दएऊ॥ एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥'* (१२४। २-३) (३) *'चले जुगल मुनिपद सिर नाई॥ एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार॥'* (१३९) तथा इस कल्पमें भी रावणका जन्म कहकर अब रामजन्म कहते हैं। *'अब सो सुनहु जो बीचहि राखा'* यह कहकर मनु-शतरूपाका प्रकरण भानुप्रतापके प्रकरणसे मिलाते हैं। तात्पर्य कि मनुप्रार्थित श्रीरामजीने भानुप्रताप रावणका वध किया।

नोट—२ यहाँतक श्रीपार्वतीजीके *'प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥'* (११०। ४) *'राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। सर्बरहित सब उर पुर बासी॥ नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू॥'* (१२०। ६-७) इस प्रश्नका उत्तर हुआ।

अवतार-हेतु-प्रकरण समाप्त हुआ।

(तदन्तर्गत भानुप्रताप-रावण-प्रकरण भी समाप्त हुआ)

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु।